अप्रैल
2024

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष – 88 | अंक – 4 | प्रति – ₹ 25 | ₹-300 वार्षिक

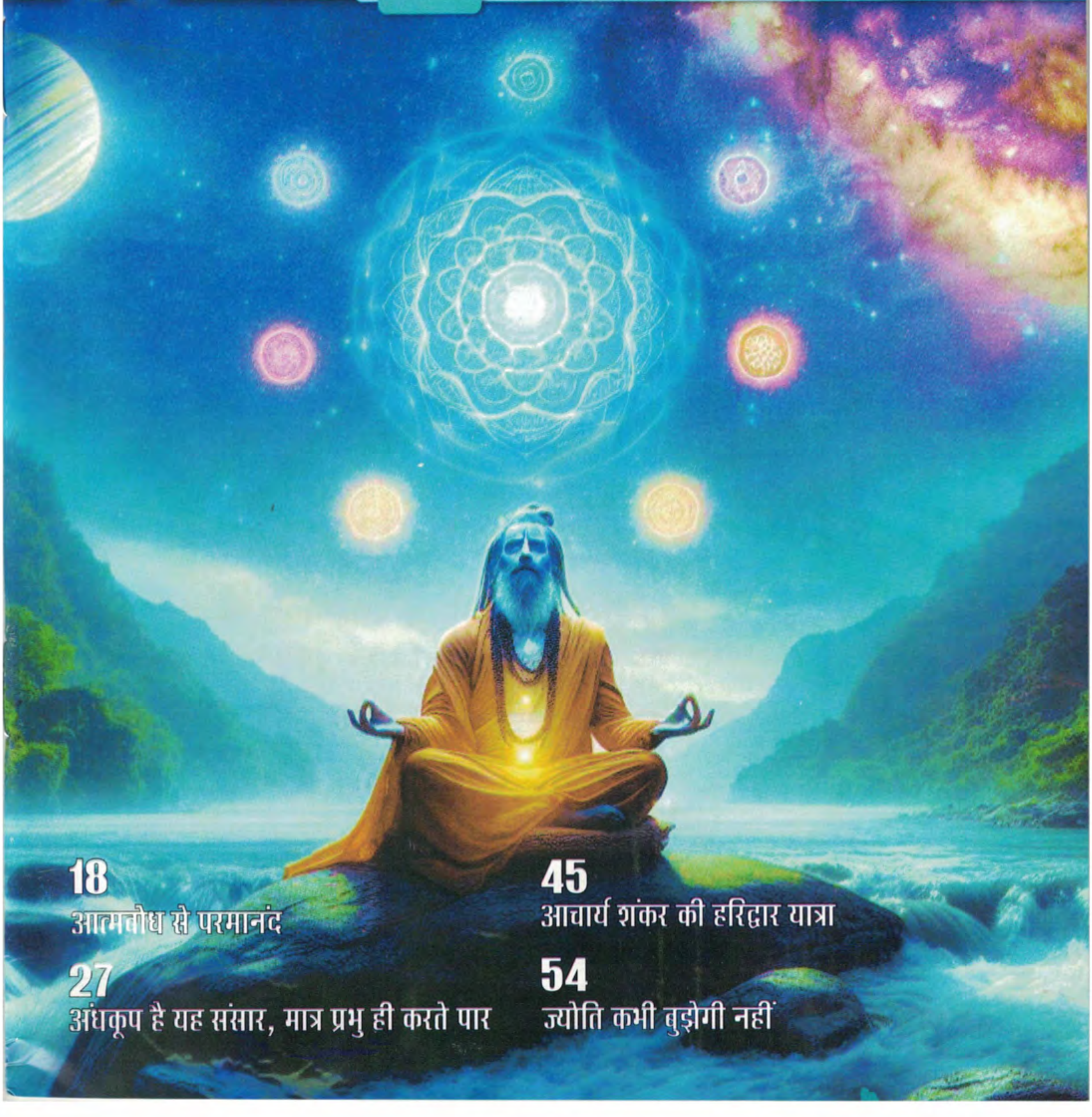

18
आत्मबोध से परमानंद

27
अंधकूप है यह संसार, मात्र प्रभु ही करते पार

45
आचार्य शंकर की हरिद्वार यात्रा

54
ज्योति कभी बुझेगी नहीं

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

अप्रैल–1949, पृष्ठ-6

ब्राह्मणत्व की महान जिम्मेदारी

विद्यावान और बुद्धिमानों के पास जो बुद्धि वैभव है,उसका उपयोग स्वल्प बुद्धिमानों को अधिक बुद्धिमान बनाने के लिए किया जाना चाहिए। इस कार्य में विद्वानों को अपना निज का स्वार्थ छोड़ना पड़ेगा, ऐशोआराम और संयम की तृष्णा को घटाना पड़ेगा। जीवन-निर्वाह की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित रहना पड़ेगा। उनका यह त्याग बड़ा भारी त्याग है। बुद्धिमान मनुष्य ईमानदारी से भी काफी कमा सकते हैं,फिर यदि वे बेईमानी पर उतर आवें तब तो कहना ही क्या है? अनेकों चतुर धनियों की तरह वे भी श्रीसंपन्न हो सकते हैं, पर इस प्रलोभन से बचकर गुजारे मात्र से काम चलाना और शेष समय तथा शक्तियों को जनता-जनार्दन की सेवा में समर्पित कर देना, यही ब्राह्मणत्व का सच्चा आदर्श है, यह त्याग ही सच्चा तप है, तपस्वी ब्राह्मणों की इसी तपश्चर्या के फलस्वरूप सारा देश सारा समाज सुख-संपन्नता का लाभ उठाता था।थोड़ी-सी नदियों से बड़े विस्तृत क्षेत्र धन-धान्य से,वृक्ष-वनस्पतियों से, फल-फूलों से भरे-पूरे रहते हैं। यदि वे नदियाँ सूख जाएँ अथवा अपना जल दूसरों के उपयोग के लिए मुफ्त देने से इनकार कर दें, त्याग और सेवा के सिद्धांत की अवहेलना कर दें तो वे नदियाँ पानी से चाहे कितनी ही भरी-पूरी क्यों न रहें यह निश्चित है कि वह प्रदेश शुष्क, कुरूप और श्री-विहीन हो जाएगा। दुर्भाग्य से भारतभूमि और हिंदू जाति को भी ऐसी ही बुरी स्थिति का सामना करना पड़ा है। ब्राह्मणों ने विद्या को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति समझकर उसका उपयोग स्वार्थ साधन तक ही सीमित रखा, फलस्वरूप उचित नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन के अभाव में जनता पथभ्रांत हो गई और ऐसी दशा में उसकी दीनता, दासता, भ्रांति, अनैतिकता, स्वार्थपरता आदि को उलझन भरी झाड़ियों में भटक जाना स्वाभाविक ही था।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

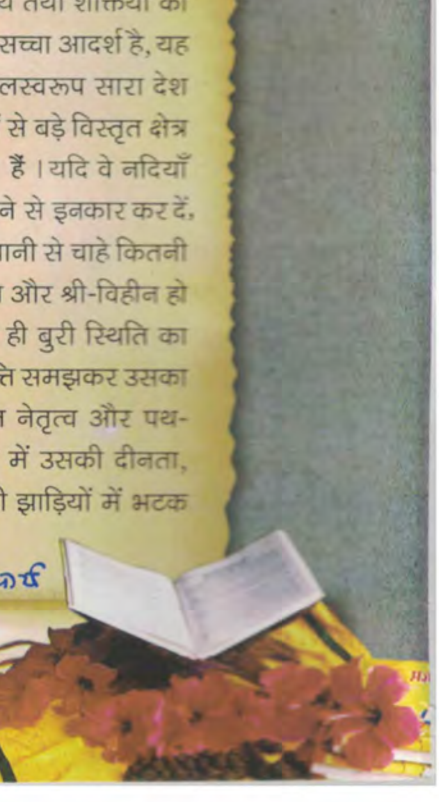

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	04
अप्रैल	:	2024
चैत्र-वैशाख	:	2080-81
प्रकाशन तिथि	:	01.03.2024

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

आध्यात्मिकता का नवोन्मेष

'वसंत ऋतु'—प्रज्ञावतार के अनेकों अनुभवों एवं आयामों को अपने में समेटे हुए है। वैसे भी भारत व भारत की संस्कृति का, सृष्टि के सनातन सत्य का सारा ताना-बाना इसी वसंत से लिपटा और गुँथा है। सृष्टि का नवोन्मेष, प्रकृति का नवल शृंगार मिलकर वसंतोत्सव का उल्लास उत्पन्न करते हैं। '**ऋतूनां कुसुमाकरः**' कहकर ईश्वर ने इस ईश्वरीय विभूति में अनंत प्रकाश, प्राण व प्रेरणाएँ भरी हैं। **नवरात्र का नवल अंकुरण भी इसी पावन ऋतु में है।** इस सृष्टि पर्व में 'माँ सरस्वती' के अवतरण का ज्ञान-विचार एवं विमर्श है। इसी में 'माता महालक्ष्मी' का प्रकृति में समाया स्वर्णिम ऐश्वर्य एवं सुगंधित सौंदर्य है। अंतःकरण में दुष्प्रवृत्तियों, दोषों एवं बाहर के वातावरण में दुष्टों-दुर्जनों का दलन करने वाला 'माँ महाकाली' का प्रचंड पराक्रम व अनंत साहस इसी में है। जगन्माता 'महागौरी' का महातप एवं वेदमाता 'गायत्री' का विमल विवेक इसमें ही है।

इस संस्कृति पर्व में वीर अपनी वीरता खोजते हैं, प्रेमी अपना प्रेम मिलन। सुंदरता को शृंगार, भक्तों को भक्ति का रस इसमें सहजता से मिल जाता है। ज्ञानियों के ज्ञानबीज, योगियों के योगरहस्य, कर्म की गहन गति का सार इसी में है। तभी तो महाप्रज्ञा ने प्रज्ञावतार की जीवन चेतना में अवतरण के लिए इसी महामुहूर्त का चयन किया। यों तो प्रत्येक जीव के जीवन की आयु-गणना वर्षानुवर्ष वसंत से करने का चलन है, परंतु प्रज्ञावतार की मानव लीला में वसंत पर्व प्रत्येक नवोन्मेष का समय संदर्भ बन गया। वर्ष 1926 ई० के वासंती क्षण से हुआ आध्यात्मिक आरंभ हर नए वर्ष के नव वसंत में नवीन आयाम व नवल अनुभव जोड़ता गया। यह देवमुहूर्त तब से अब तक समय की सारी सीमाओं को पार कर दिव्य मुहूर्त बना हुआ है। ❐

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- आध्यात्मिकता का नवोन्मेष 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  शाकाहार से दूर होते भारतीय 5
- एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति 8
- **पर्व विशेष—महावीर जयंती**
  सबके लिए खुला है
  सच्चे सुख का द्वार 12
- अध्यात्म पथ के नैष्ठिक आधार 14
- मृतात्मा का अदृश्य सहयोग 16
- आत्मबोध से परमानंद 18
- यथा राजा तथा प्रजा 21
- यज्ञोपवीत का मर्म 25
- अंधकूप है यह संसार,
  मात्र प्रभु ही करते पार 27
- सर्वथा त्याज्य है मांसाहार 30
- संत एकनाथ की भगवद्दृष्टि 33
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—19**
  तीन दिव्य उपास्य और उनके
  तीन महान वरदान 35
- श्रम, सेवा और त्याग 38
- तन और मन की गति 41
- बरफ से जुड़े रोचक तथ्य 43
- आचार्य शंकर की हरिद्वार यात्रा 45
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—180**
  कार्यक्षेत्र का कार्यकुशलता पर प्रभाव 47
- **युगगीता—287**
  अश्रद्धा से किए गए कर्मों का परिणाम 50
- **विश्वविद्यालय परिसर से—226**
  भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार का
  केंद्र—विश्वविद्यालय 52
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  ज्योति कभी बुझेगी नहीं (उत्तरार्द्ध) 54
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  अंतर्जगत् का अंतर्विज्ञान 60
- **अपनों से अपनी बात**
  समाज के नवनिर्माण की
  वैचारिक पृष्ठभूमि 63
- समर्पण पर्व आया है (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

साधना से अंतर्जागरण—दिव्य अलौकिक अनुभूतियाँ

अप्रैल-मई, 2024 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	05 अप्रैल	पापमोचनी एकादशी	शनिवार	04 मई	वरूथिनी एकादशी
सोमवार	08 अप्रैल	सोमवती अमावस्या	शुक्रवार	10 मई	परशुराम जयंती/ अक्षय तृतीया
मंगलवार	09 अप्रैल	नवरात्रारंभ/नवसंवत्सरारंभ			
गुरुवार	11 अप्रैल	गणगौर	सोमवार	13 मई	सूर्य षष्ठी
रविवार	14 अप्रैल	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	14 मई	गंगोत्पत्ति
बुधवार	17 अप्रैल	श्रीराम नवमी	शुक्रवार	17 मई	जानकी जयंती
शुक्रवार	19 अप्रैल	कामदा एकादशी	रविवार	19 मई	मोहिनी एकादशी
रविवार	21 अप्रैल	महावीर जयंती	मंगलवार	21 मई	नृसिंह जयंती
मंगलवार	23 अप्रैल	हनुमान जयंती/पूर्णिमा व्रत	गुरुवार	23 मई	बुद्ध पूर्णिमा

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

शाकाहार से दूर होते भारतीय

भारतीय संस्कृति में सात्त्विक आहार-विहार को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। सात्त्विक आहार-अन्न, शाक और फलों पर आधारित होता है इसलिए इसे शाकाहार कहते हैं। शाकाहार शरीर को स्वस्थ्य रखता है और मन को प्रसन्नता प्रदान करता है। इससे दीर्घायु प्राप्त होती है। इसके विपरीत मांसाहार के अनेकों दुष्प्रभाव हैं।

अपने देश में शाकाहार को आदर्श माना जाता है, परंतु राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आँकड़े बताते हैं कि अपना देश मांसाहार की ओर अग्रसर हो रहा है। राजस्थान और पंजाब को छोड़कर देश के तमाम राज्यों में मांसाहारियों की संख्या बढ़ी है। दिल्ली में तो यह वृद्धि-दर सबसे ज्यादा है। मिंट-हिंदुस्तान टाइम्स-हाउ इंडिया 'लिव्स डाटा फेलोशिप-2018' पाने वाले अर्जुन श्रीनिवास का विश्लेषण कुछ ऐसा ही बताता है।

यह ठीक है कि अपने देश में उन लोगों की संख्या बढ़ी है, जो शाकाहार में विश्वास रखते हैं, परंतु वास्तविकता कुछ और है। मिंट ने राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) के लगातार दो दौर के आँकड़ों का विश्लेषण किया है। वर्ष 2005-06 और वर्ष 2015-16 के सर्वेक्षण के आँकड़े यह बताते हैं कि पिछले दशक में देश में शाकाहारियों की संख्या में अत्यधिक गिरावट आई है।

विश्लेषण बताता है कि राजस्थान और पंजाब को छोड़कर शेष सभी राज्यों में मांस खाने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है। दिल्ली में जहाँ इस मामले में सबसे अधिक वृद्धि-दर दिखती है तो वहीं हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और उत्तराखंड जैसे कई दूसरे उत्तर भारतीय राज्यों में भी मांसाहारियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इन राज्यों में मांस का सेवन पहले की तुलना में काफी बढ़ा है। इसकी कुछ हद तक यह कहकर भी समीक्षा की जा सकती है कि शुरू में इन राज्यों में मांसाहारियों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी।

देश के दक्षिणी हिस्से की बात करें, तो पहले कर्नाटक मांस-उपभोग के मामले में एक 'बाहरी सूबा' माना जाता था, परंतु अब यह अपने पड़ोसी राज्यों के साथ कदम-ताल करता नजर आ रहा है। इस दक्षिण भारतीय राज्य में मछली, मांस और अंडों की खपत में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। केवल अंडों की खपत को छोड़कर मांसाहार के अन्य मामलों में बदलाव की पड़ताल की जाए तो इसमें सबसे ज्यादा कमी हरियाणा में दिखती है। यहाँ 11.1 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है।

आँकड़े यह भी बताते हैं कि महिलाएँ मांस और अंडे खाने के मामले में पुरुषों से पीछे हैं। 2015-16 का सर्वे कहता है कि देश में 30 फीसदी महिलाएँ शाकाहारी हैं, जबकि इनकी तुलना में 22 फीसदी पुरुषों ने मांस से अपनी दूरी बताई। हालाँकि महिलाएँ तेजी से पुरुषों के बराबर आने को भी तैयार दिख रही हैं, क्योंकि पिछले एक दशक में मांस और अंडे खाने के मामले में पुरुषों की तुलना में महिलाओं में कहीं अधिक वृद्धि देखी गई है।

चौंकाने वाली बात यह है कि अंडा, मांस और मछली खाने वालों की संख्या में यह वृद्धि तब

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

हुई है, जब प्रोटीन से भरपूर इन खाद्य पदार्थों की कीमतें तेजी से बढ़ी हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि बढ़ती आमदनी के कारण भारतीय परिवार अपने खान-पान में परिवर्तन ला रहे हैं और वे मांस का ज्यादा सेवन करने लगे हैं। विश्लेषण यह भी बताता है कि गरीबों ने आहार में परिवर्तन करते हुए अंडों का उपयोग करना शुरू कर दिया है। इस दशक में तमाम आम वर्गों के बीच अंडों की खपत बढ़ी है, परंतु देश की सबसे गरीब 20 फीसदी आबादी पहले की तुलना में इनका कहीं ज्यादा सेवन कर रही है।

पिछले दो सर्वेक्षणों का विश्लेषण यह भी बताता है कि भारतीयों का रुख मांसाहार की ओर उन्मुख हुआ है, परंतु ये सर्वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि लोगों में एकदूसरे के घुलने-मिलने की प्रक्रिया चल रही है। वे एकदूसरे के खान-पान को अब स्वीकार करने लगे हैं। इसकी वजह निश्चित तौर पर लोगों की बढ़ती आमदनी है। यह उन्हें अपने पारंपरिक खान-पान से बाहर का स्वाद लेने और नए प्रयोग करने को प्रेरित कर रही है।

अपने देश में शाकाहारियों की भी कमी नहीं है। विभिन्न प्रकार के शाकाहारी इस प्रकार हैं—**लैक्टो वेजिटेरियन** यानी लैक्टो वेजिटेरियन वे शाकाहारी होते हैं, जिनके खाने में सब्जियाँ तो होती हैं, पर अंडा नहीं होता।

भारत में लैक्टो वेजिटेरियन को ही शाकाहारी का पर्याय माना गया है। इस तरह के लोग रेड व ह्वाइट मांस सहित तमाम पशु-खाद्य उत्पादों से दूर रहते हैं। हाँ! पनीर, दूध जैसे दुग्ध-उत्पाद उनके भोजन का हिस्सा जरूर होते हैं, जिनका सेवन वे रुचिपूर्वक करते हैं।

ओवो वेजिटेरियन—ये वो शाकाहारी होते हैं, जो रेड या ह्वाइट मांस, मछली या अन्य जीव-जंतुओं को अपने आहार में शामिल नहीं करते। दुग्ध उत्पाद से भी दूरी बनाए रखते हैं। इसका अर्थ है कि ये दूध या दूध से बने खाद्य पदार्थ नहीं खाते। हालाँकि उनके भोजन में अंडा जरूर देखा जा सकता है। ये अंडे को शाकाहार का ही हिस्सा मानते हैं। इसलिए ओवो वेजिटेरियन भी 'एगीटेरियन' माने जाते हैं।

ओवो-लैक्टो वेजिटेरियन—इस तरह के शाकाहार में लोग मछली या अन्य समुद्री खाद्य पदार्थ तो नहीं खाते, परंतु उनके भोजन में कुछ पशु-खाद्य उत्पाद होते हैं, जैसे दूध और अंडे। ओवो-लैक्टो वेजिटेरियन आमतौर पर फल, सब्जी, अनाज, अखरोट, दूध, पनीर, दही, अंडे आदि खाते हैं। पश्चिमी देशों में शाकाहारी व्यक्ति लगभग इसी तरह के आहार को पसंद करते हैं। हालाँकि अपने देश में अंडा सामान्य रूप से शाकाहार नहीं माना जाता, इसलिए ओवो-लैक्टो वेजिटेरियन 'एगीटेरियन' कहे जाते हैं।

वीगन—इस तरह के शाकाहारी लोग सभी तरह के पशुआधारित खाद्य उत्पादों से दूर रहते हैं अर्थात वीगन मांस-मछली से परहेज तो करते ही हैं, अंडा और दुग्ध-उत्पाद भी नहीं खाते। वीगन शहद का भी सेवन नहीं करते। इस तरह के आहार को अपने जीवन में उतारने वाले लोग रेशम, चमड़े या ऊन के उत्पादों से भी दूर रहते हैं।

फ्लेक्सिटेरियन—फ्लेक्सिटेरियन उन लोगों को कहा जाता है, जो शाकाहारी तो होते हैं, पर कभी-कभी वे मांस या अन्य पशु-खाद्य उत्पादों का सेवन कर लेते हैं। ये भरपूर प्रयास करते हैं कि पशु-खाद्य उत्पाद इनके आहार का भाग न हों और वे मूल रूप से शाकाहार ही ग्रहण करें।

इस दृष्टि से देखें तो तकनीकी रूप से ये शाकाहारी तो नहीं होते, परंतु उनका प्रयास उन्हें

इस श्रेणी में शामिल करता है। ये लोग मांसाहार से दूर रहते हैं। वे ऐसे किसी भोजन से परहेज करते हैं, जिससे किसी को कष्ट या पीड़ा की अनुभूति होती है।

आहार भले ही अपने स्वाद के अनुसार लिया जाता है, परंतु श्रेष्ठ आहार वह है, जो स्वाद के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए ग्रहण किया जाता है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से शाकाहार, सात्त्विक आहार ग्रहण करने से शरीर एवं मन स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है। इसलिए शाकाहार को उत्तम एवं श्रेष्ठ आहार कहा जाता है। भारतीयों को इस ओर लौटने की आवश्यकता गंभीरता से है। ❑

महर्षि गौतम अपनी भार्या अहल्या के साथ ब्रह्मगिरि-क्षेत्र में निवास करते थे। वहाँ भयंकर अकाल पड़ा तो गौतम ऋषि ने वरुण देव को प्रसन्न करने हेतु तपस्या की। वरुण देव प्रकट हुए और गौतम ऋषि के समक्ष कभी क्षीण न होने वाली धारा का प्रवाह कराकर अंतर्धान हो गए। दूसरों का उपकार करके महर्षि गौतम को संतुष्टि तो मिली, पर इस कारण उनका मान बढ़ जाने से अन्य लोगों के मन में ईर्ष्या पनपने लगी। उनकी स्त्रियों ने अपने पतियों को उकसाया तो उन्होंने गौतम ऋषि के अनिष्ट की आकांक्षा से गणपति की अभ्यर्थना की।

गणेश भगवान प्रकट तो हुए पर बोले—"तुम लोग यह ध्यान रखो कि उपकारी को दुःख देने वाला मात्र अपने विनाश का मार्ग तैयार करता है।" तथापि उन व्यक्तियों को वचन दिए हुए होने के कारण गणेश जी एक दुर्बल गाय बनकर ऋषि गौतम के समक्ष प्रकट हुए। महर्षि गौतम का हृदय करुणासिक्त था। उनसे दुर्बल गाय का कष्ट नहीं देखा गया तो उसे मार्ग से किनारे लाने के उद्देश्य से उन्होंने उसे छोटे से तिनके से हाँकने का प्रयास किया। तिनके के स्पर्श मात्र से गायरूपी गणेश जी भूमि पर गिर पड़े और वह गाय वहीं मर गई। घटना घटते ही निकट छिपे सभी द्वेषी पड़ोसीगण बाहर निकल आए और गौतम ऋषि पर गोहत्या का आरोप लगाने लगे।

निर्मल हृदय गौतम ऋषि ने सहर्ष अपनी भूल स्वीकार कर ली और उन्हीं लोगों से प्रायश्चित का विधान पूछा। वे लोग द्वेष से ग्रस्त तो थे ही, सो उन्होंने गौतम ऋषि को एक असंभव साधना का विधान बताया। उन्होंने सोचा था कि इसे तो वे कभी पूर्ण कर ही न पाएँगे, परंतु गौतम ऋषि श्रद्धा-भाव से उसी तपस्या में निरत हो गए।

उनके दृढ़ संकल्प से प्रसन्न होकर भगवान शिव उनके सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें गंगा प्रदान करते हुए बोले—"ऋषिवर! आपने संपूर्ण जीवन दूसरों के कष्ट-निवारण की साधना की है, इसीलिए आज से माँ गंगा आपके साथ रहेंगी और गंगा—गौतमी या गोदावरी कहलाएँगी।" वह स्थान 'त्र्यंबकेश्वर' नासिक के पास स्थित द्वादश में से एक ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ और ऋषि गौतम की सदाशयता सदा के लिए अमर हो गई।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

ब्रह्म के विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् (5.1.1) में कहा गया है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है। यह जगत् भी उस पूर्ण परब्रह्म से ही पूर्ण है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण परब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है। उस पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बचा रहता है।

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म की शक्ति ही सबसे बड़ी शक्ति है; क्योंकि ब्रह्म सर्वशक्तिशाली है। वेदांत दर्शन के अनुसार सर्वशक्तिमान परब्रह्म की जो परा और अपरा नामक दो प्रकृतियाँ हैं, वे उसी की अपनी शक्तियाँ हैं, इसलिए वे शक्तियाँ ब्रह्म से अभिन्न हैं। परब्रह्म ही इन शक्तियों का आश्रय है, अतः इनसे भिन्न भी है।

वह परब्रह्म परमेश्वर अपनी परा और अपरा, दोनों प्रकृतियों को लेकर ही सृष्टिकाल में जगत् की रचना करता है और प्रलयकाल में इन दोनों प्रकृतियों को अपने में विलीन कर लेता है। वह परब्रह्म शब्द, स्पर्श आदि से रहित, निर्विशेष, निर्गुण एवं निराकार भी है तथा अनंत कल्याणमय गुण समुदाय से युक्त सगुण एवं साकार भी है।

ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में ही कहा गया है—

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़-चेतन स्वरूप जगत् है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है।

अथर्ववेद 10-8-1 में कहा गया है—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अर्थात जो भूत, भविष्य और सबमें व्यापक है और जो दिव्यलोक का भी अधिष्ठाता है और जिसका प्रकाश आनंद में विचरण कराने वाला है, उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ।

वहीं ऋग्वेद 1.164.46 में कहा गया है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

अर्थात उस एक सत्य (परब्रह्म) को विद्वान लोग अलग-अलग रूपों में व्यक्त करते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि ब्रह्म ही परम सत्य है। ब्रह्म की शक्ति ही सर्वोपरि शक्ति है ब्रह्मानंदस्वरूप है। उस ब्रह्म को ही ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, प्रभु, सच्चिदानंद, विश्वात्मा, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। जो उस ब्रह्म को जान लेता है, उसके लिए कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता। पूर्ण ब्रह्म को जान लेने में ही जीवन की पूर्णता है और यही मानव जीवन का परम लक्ष्य भी है।

वह परब्रह्म ही इंद्र में, रुद्र में, ब्रह्मा में और विष्णु में है। उस ब्रह्म से ही प्रकट यह संपूर्ण विश्व है, जो उसी प्राण रूप में गतिमान है। ब्रह्म की शक्ति से ही अग्नि और सूर्य तपते हैं और ब्रह्म की शक्ति से ही इंद्र, वायु और यम अपने-अपने कामों में लगे रहते हैं।

ब्रह्म की शक्ति ही सर्वोपरि है, इसको लेकर केनोपनिषद् में एक रोचक कथा आती है। कथा के अनुसार परब्रह्म परमेश्वर ने देवों पर कृपा करके

उन्हें अपनी शक्ति प्रदान कर दी। ब्रह्म से शक्ति पाकर देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त कर ली। वास्तव में यह विजय तो परब्रह्म परमेश्वर की थी; क्योंकि परब्रह्म की शक्ति के कारण ही देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी और देवता तो केवल निमित्त मात्र थे, पर अभिमानवश देवों ने परब्रह्म की शक्ति और महिमा को स्वयं की शक्ति और महिमा समझ लिया और देवों के मन में यह अभिमान भर गया कि वे ही सर्वशक्तिमान हैं और उन्होंने अपनी शक्ति के बल पर असुरों पर विजय प्राप्त की है। अभिमानवश देवों ने यह भी मान लिया कि वे अजेय हैं और उन्हें कोई हरा नहीं सकता, जीत नहीं सकता।

देवों के मिथ्या अभिमान को सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, परब्रह्म परमेश्वर समझ गए और कल्याणकारी परमेश्वर ने सोचा कि यदि देवों में यह अहंभाव बना रहा तो उनका पतन हो जाएगा। करुणासिंधु परमेश्वर देवों के कल्याण के लिए एवं उनके मिथ्या अभिमान को दूर करने हेतु उनके समक्ष दिव्य साकार यक्ष रूप में प्रकट हो गए। देवता उस यक्ष के दिव्य व विशाल रूप को अचंभित हो देखते रहे, पर वे यह पहचान न सके कि वह कौन है।

वे यह विचार करने लगे कि यह दिव्य व विशाल यक्ष कौन है? वे उस विशाल व दिव्य यक्ष का परिचय जानने को उत्सुक हो उठे। देवों ने सोचा कि अग्निदेव परम तेजस्वी हैं, वेदज्ञ हैं, सर्वज्ञ हैं तभी तो उनको 'जातवेद' नाम दिया गया है। इसलिए अग्निदेव ही उस दिव्य व विशाल यक्ष का वास्तविक परिचय प्राप्त करने के लिए उपयुक्त रहेंगे।

देवों ने अग्नि से प्रार्थना की—"हे जातवेद! आप ही जाकर यह पता लगाएँ कि वह अद्भुत व विशाल यक्ष रूपधारी कौन है?" अग्निदेव को अपनी बुद्धि व शक्ति का गर्व तो था ही।

अत: वे इस कर्म के लिए सहर्ष तैयार हो गए और बोले—"अच्छी बात है, मैं अभी पता लगाता हूँ।" अग्निदेव ने सोचा यह कौन-सी बड़ी बात है। इसलिए वे तुरंत उस यक्ष के समीप जा पहुँचे। अग्निदेव को अपने समीप देखकर यक्ष ने पूछा—"आप कौन हैं?" अग्निदेव तमककर बोले—"तुम मुझे नहीं जानते? मैं अग्नि हूँ। मेरा ही नाम जातवेद है।"

परब्रह्म परमेश्वर ने अनजान बनकर कहा—"अच्छा! तो आप ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और जातवेद हैं? आपने दर्शन देकर बड़ी कृपा की। बड़ी अच्छी बात है, पर आप यह तो बताइए कि आपमें क्या शक्ति है और आप क्या कर सकते हैं?"

यह सुनकर अग्निदेव झुँझला उठे और बोले—"मैं क्या कर सकता हूँ, यह पूछने के बजाय आप यह क्यों नहीं पूछते कि मैं क्या नहीं कर सकता हूँ। मैं चाहूँ तो पलभर में सारे भूमंडल को जलाकर राख कर सकता हूँ।" "अच्छा तो यह बात है? तो जरा इस सूखे तिनके को जला दीजिए।"—यक्ष ने कहा।

अग्निदेव ने इसे अपना अपमान समझा और तुरंत सामने पड़े उस सूखे तिनके को जलाने को उद्धत हुए। पर यह क्या? अपनी सारी शक्ति लगा देने पर भी वे उस सूखे तिनके को जला नहीं सके। कारण स्पष्ट था।

ब्रह्म ने अग्निदेव को जो अपनी शक्ति दाह के रूप में दी थी, उसे अपने पास वापस समेट लिया था। फिर सूखा तिनका कैसे जलता? अग्निदेव लज्जा से जल गए और देवताओं के पास वापस

आकर बोले—"मैं इस यक्ष को पहचानने में असफल रहा हूँ।"

देवों ने तब वायुदेव से कहा—"भगवन्! आप जाकर इस यक्ष का पूरा पता लगाइए कि यह कौन है।" वायुदेव को भी अपनी बुद्धि-शक्ति का गर्व तो था ही। अत: वे तुरंत बोले—"अच्छी बात है, मैं अभी पता लगाता हूँ।"

वायुदेव दौड़कर यक्ष के समीप गए। वायुदेव मन-ही-मन सोच रहे थे कि अग्निदेव कहीं अवश्य ही भूल कर बैठे होंगे, अन्यथा इस यक्ष का परिचय जान लेना कौन-सी बड़ी बात है। लगता है यक्ष को जान लेने का श्रेय मेरे ही हिस्से में है।

वायुदेव को अपने समीप खड़ा देखकर यक्ष ने फिर अनजान बनकर पूछा—"आप कौन हैं?" वायुदेव ने भी तमककर कहा—"मैं ही प्रसिद्ध वायु हूँ। मेरा ही गौरवमय नाम 'मातरिश्वा' है। मुझे भला कौन नहीं जानता?" यक्ष ने फिर अनजान बनकर कहा—"अच्छा तो आप ही हैं, जो अंतरिक्ष में बिना आधार के घूमते-फिरते हैं? आप ही वायुदेव मातरिश्वा हैं? फिर आप कृपा करके यह बताएँ कि आपमें क्या शक्ति है और आप क्या कर सकते हैं?"

यह प्रश्न सुनकर वायुदेव गर्वोन्मत्त हो बोल पड़े—"मैं चाहूँ तो सारे भू-मंडल को बिना आधार के ही उठा दूँ और उड़ा दूँ।" तब उस यक्ष ने कहा—"तब तो आप सचमुच बड़े शक्तिशाली हैं। जरा आप इस सूखे तिनके को तो उड़ा दीजिए।" वायुदेव ने इसे अपना अपमान समझा और उस तिनके को उड़ाने के लिए उद्धत हुए। उन्होंने उसे उड़ाने को अपनी सारी शक्ति लगा दी। पर यह क्या? वह तिनका हिला तक नहीं। वायुदेव भी अग्निदेव की तरह लज्जित हो तिलमिलाकर लौट आए और बोले—"मैं भी भली भाँति नहीं जान पाया कि यह यक्ष कौन है।"

जब अग्नि और वायु जैसे शक्तिसंपन्न देवगण असफल हो गए, तब सभी देवगण देवराज इंद्र के पास पहुँचे और उनसे भी यक्ष के बारे में पता करने की प्रार्थना की। देवराज गर्वोन्मत्त हो बोल पड़े—"यह कौन-सी बड़ी बात है?" इंद्र में सबसे अधिक अहंभाव था। वे तुरंत यक्ष के पास पहुँचे, पर उनके वहाँ पहुँचते ही देखते-देखते उनके सामने से ही यक्ष अंतर्धान हो गया।

इंद्र में अन्य देवताओं से अधिक अभिमान था, इसलिए ब्रह्म ने उनको वार्त्तालाप का अवसर नहीं दिया, पर इस एक दोष के अतिरिक्त इंद्र अन्य सब प्रकार के अधिकारी थे, इसलिए उन्हें ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान कराना आवश्यक समझकर इसी की व्यवस्था के लिए वे स्वयं अंतर्धान हो गए और यक्ष के अंतर्धान हो जाने पर भी इंद्र वहीं खड़े रहे।

उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था, ठीक उसी स्थान पर अत्यंत शोभामयी हिमाचलकुमारी उमा देवी प्रकट हो गईं। वास्तव में इंद्र पर कृपा करके करुणामय परब्रह्म ने ही उमारूपा साक्षात् ब्रह्मविद्या को प्रकट किया था। इंद्र ने अत्यंत भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और बोले—"भगवती! आप सर्वज्ञ शिरोमणि ईश्वर श्री शंकर की शक्ति हैं। अत: आपको यह अवश्य पता होगा कि यह दिव्य यक्ष, जो दर्शन देकर तुरंत अंतर्धान हो गया, वस्तुत: वह कौन है और किस हेतु से यहाँ प्रकट हुआ था?"

तब देवराज के पूछने पर भगवती उमा देवी ने कहा—"तुम जिन दिव्य यक्ष को देख रहे थे और

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

जो इस समय अंतर्धान हो गए हैं, वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। तुम लोगों ने जो असुरों पर विजय प्राप्त की है, वह उन्हीं परब्रह्म की कृपा से की है। अतएव यह उन परब्रह्म की ही विजय है। तुम तो सिर्फ निमित्त मात्र थे, पर तुम सभी देवतागण ब्रह्म की इस विजय को अपनी विजय समझ बैठे। ब्रह्म की महिमा को अपनी महिमा समझ बैठे।

''उन्हीं परब्रह्म ने तुम्हारे मिथ्या अभिमान का नाश करके तुम्हारे कल्याण के लिए यक्ष के रूप में प्रकट होकर अग्नि और वायु का गर्व चूर्ण किया एवं तुम्हें वास्तविक ज्ञान देने के लिए मुझे प्रेरित किया। अतएव तुम अपनी शक्ति का सारा अभिमान त्याग दो। तुम जिन ब्रह्म की महिमा से महिमान्वित और शक्ति से शक्तिमान बने हो, उन्हीं की महिमा समझो। स्वप्न में भी यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्रह्म की शक्ति के बिना अपनी स्वतंत्र शक्ति से कोई भी कुछ कर सकता है।''

इस प्रकार इंद्र को उपदेश कर भगवती उमा देवी अंतर्धान हो गईं। सभी देवों को अपनी भूल का एहसास हुआ और तत्पश्चात सभी देवगण परब्रह्म का सतत ध्यान, स्मरण करते रहे और सर्वज्ञ विजय प्राप्त करते रहे।

उपरोक्त कथा का सार-संदेश यही है कि ब्रह्म की शक्ति ही सर्वोपरि है। ब्रह्म ही सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हैं। ब्रह्म की शक्ति से ही सृष्टि का कण-कण गतिमान है। ब्रह्म की शक्ति से ही सूर्य, चंद्र, तारे अपनी चमक बिखेर रहे हैं। ब्रह्म की शक्ति से ही पेड़-पौधे, वनस्पतियों व समस्त प्राणियों में जीवन व प्राणों का स्पंदन है। विश्व-ब्रह्मांड में जो कुछ भी चराचर जगत् देखने-सुनने में आ रहा है, वह सब-का-सब सर्वाधार, सर्वनियंता, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परब्रह्म परमेश्वर से व्याप्त है।

यह दुर्लभ मानव जीवन उसी परब्रह्म की प्राप्ति और अनुभूति के लिए मिला है। परब्रह्म की कृपा व शक्ति पाकर मनुष्य दुर्लभ-से-दुर्लभ को जानकर अर्थात ब्रह्मबोध, ब्रह्मानुभूति से जीव भी ब्रह्मस्वरूप हो पूर्ण हो सकता है; क्योंकि जीव उसी पूर्णब्रह्म का अंश है।

अंशी में अंश का गुण होना स्वाभाविक ही है। वे सर्वव्यापी ब्रह्म आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और रसस्वरूप हैं, इसलिए ब्रह्मानुभूति अथवा ब्रह्मबोध पाकर मनुष्य भी आनंदस्वरूप हो व आनंदित हो जाता है।

वह सभी प्रकार के क्लेषों व दु:खों से व जन्म-मरण के चक्र से छूटकर अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। ऐसा समझकर हमें संसार के प्रति ममता व आसक्ति से रहित होकर अपना कर्त्तव्य कर्म करते हुए सदा अपने हृदय-गुफा में स्थित अपनी आत्मा में परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान, स्मरण करते रहना चाहिए।

इस प्रकार नित्य-निरंतर, दीर्घकाल तक आत्मा में ब्रह्म का ध्यान करने से आत्मा में ही ब्रह्मानुभूति होती है, ब्रह्मबोध होता है अर्थात जीव और ब्रह्म, आत्मा और ब्रह्म में अभिन्नता व एकता की अनुभूति होती है और इस अनुभूति से ही साधक को परमानंद अथवा ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है।

श्रुति कहती है कि इस शरीर के नष्ट होने से पहले ही यदि ब्रह्म का बोध हो गया तो ठीक अन्यथा अनेक युगों तक विभिन्न योनियों में कष्ट भोगते रहना होगा। अस्तु ब्रह्मबोध प्राप्त कर लेना ही एकमात्र उपाय है और यही मानव जीवन का परम लक्ष्य भी है।

❑

पर्व विशेष- महावीर जयंती

सबके लिए खुला है, सच्चे सुख का द्वार

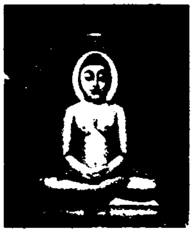

महावीर राजपुत्र थे। वे अपने पिता के बाद राजकुमार होने के नाते भावी राजा भी थे। राजकुमार होने के नाते उनका पालन-पोषण भी राजसी सुख-वैभव में ही हुआ था। उन्हें संसार की सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं, पर प्रश्न यह उठता है कि सारी सुख-सुविधाएँ होते हुए भी राज-पाट, समस्त सुख-वैभव व बंधु-बांधवों का मोह छोड़कर उन्होंने गृह-त्याग आखिर क्यों किया ?

उन्होंने दिगंबर वेश धारण क्यों किया ? समस्त सुख-सुविधाओं को त्यागकर उन्होंने घर से बाहर दु:खों व अभावों से भरा हुआ जीवन जीने को गृह-त्याग क्यों किया ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो अक्सर हमारे मन में उठते हैं।

यह सच है कि उनके पास समस्त भौतिक सुख-सुविधाएँ थीं और उन्हें कोई भौतिक दु:ख नहीं था, पर सत्य तो यह भी है कि भौतिक सुख की सीमा है। सांसारिक विषय-भोगों व साधनों से जो सुख मिलता है, वह क्षणिक और क्षणभंगुर ही होता है। वह हमेशा के लिए नहीं होता।

इसलिए सांसारिक सुख-सुविधाओं में रहने वाला व्यक्ति भी दु:खी, अशांत और अप्रसन्न रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक सुख-साधनों, विषय-भोगों से इंद्रियों को जो सुख मिलता है, वह क्षणिक और क्षणभंगुर होता है। वह सुख स्थायी व शाश्वत नहीं होता। वह सच्चा सुख नहीं होता।

सच्चा सुख तो वही है, जो सुख और दु:ख दोनों से परे हो और सदा के लिए हो। अस्तु महावीर ने सच्चे सुख का मार्ग खोजने के लिए ही समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं व राज-पाट का त्याग किया था।

वे स्वयं दु:खी नहीं थे तो क्या हुआ, वे अपने चारों ओर दु:खी प्राणियों को ही तो देख रहे थे। अत: वे अपने लिए ही नहीं, अपितु संसार के समस्त प्राणियों के लिए सच्चे सुख का मार्ग खोजने निकले थे और अंतत: अपने तप, ध्यान के द्वारा उन्होंने सच्चे व शाश्वत सुख का मार्ग प्राप्त भी कर लिया।

ज्ञानप्राप्ति के बाद उन्होंने संसार को बतलाया कि धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि बाह्य साधन, बाह्य पदार्थ सच्चे सुख के कारण नहीं हैं। सच्चा सुख किसी बाह्य साधन से प्राप्त नहीं होता। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा में ही है और वह स्वयं अपने ही सम्यक पुरुषार्थ अर्थात अहिंसा, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

जिस प्रकार किसी रोग को दूर करने के लिए रोगी को स्वयं ही औषधि-सेवन करना पड़ता है, किसी अन्य व्यक्ति के औषधि-सेवन करने से रोगी का रोग दूर नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार अपनी आत्मा का कल्याण करने और सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही सम्यक पुरुषार्थ अर्थात तप, ध्यान, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, संयम आदि का अभ्यास करना होगा। धर्म, तप, ध्यान किसी भी व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत विषय है। अत: प्रत्येक व्यक्ति अपना कल्याण स्वयं अपने ही प्रयासों से कर सकता है।

भगवान महावीर ने यह उपदेश किया कि जब तक जीव के साथ अच्छे व बुरे कर्मों का बंधन लगा हुआ है, तब तक यह जीव इस संसार में जन्म-मरण करता हुआ सुख और दु:ख भोगता रहेगा और वह तब तक सच्चा व शाश्वत सुख भी प्राप्त नहीं कर सकेगा, परंतु जब यह जीव अपने सत्पुरुषार्थ अर्थात अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों के बंधन को छिन्न-भिन्न कर देगा, तब यह जीव निश्चित ही मुक्ति पाने का अधिकारी हो सकेगा।

तब वह कर्मों का बंधन छिन्न-भिन्न होते ही सुख-दु:ख से परे होकर शाश्वत सुख प्राप्त कर सकेगा। मुक्ति की अवस्था में ही जीव को शाश्वत सुख की अनुभूति होती है। मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उसे किसी प्रकार का भौतिक सुख पाने की लालसा भी नहीं रह जाती। मुक्ति की अवस्था में यह आत्मा अनंत काल तक एक अनुपम, अतींद्रिय व सच्चे सुख की अनुभूति करती है।

सच्चे सुख व मुक्ति का यह द्वार संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए खुला है, केवल उसे सम्यक पुरुषार्थ करने की आवश्यकता भर है। इस प्रकार भगवान महावीर द्वारा दिखाया गया पथ हर साधक को मुक्ति प्राप्त करने के पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। ❑

एक बार पर्शिया के नागरिक बहुत परेशान हो गए; क्योंकि पक्षी उनके खेतों का अनाज खा जाया करते थे। परेशान नागरिक अपना कष्ट लेकर राजा फ्रेडरिक के पास पहुँचे। सुनकर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने तत्काल राज्य के सभी पक्षियों को मारने की घोषणा कर दी। पक्षियों के मारे जाने पर नागरिकों ने उत्सव-सा मनाया और यह सोचा कि उनकी सारी समस्याओं का अंत हो गया, लेकिन अगले वर्ष खेतों में अनाज बोने पर एक दाना भी नहीं उगा।

राजा ने कारण पता लगवाया तो पता चला कि मिट्टी में जो कीड़े थे, उन्होंने बीजों को ही खा लिया था। पहले इन कीड़ों को पक्षी खा जाते थे, जिससे बीज सुरक्षित रहते थे, लेकिन इस बार पक्षियों के न रहने से फसल के होने से पहले ही त्राहि-त्राहि मच गई। जब यह कारण सबको पता चला तो राजा से लेकर सामान्य नागरिक तक, हर कोई अपनी नादानी पर पछताया। उन्हें महसूस हुआ कि इस सृष्टि में सभी प्राणी एकदूसरे पर निर्भर हैं, यहाँ पर परमात्मा ने कोई भी प्राणी व्यर्थ नहीं बनाया और सभी मिलकर सृष्टिचक्र में सहयोग करते हैं। इसमें से किसी एक को भी हटाना, प्रकृति की व्यवस्था में गतिरोध पैदा करना है, जिसका दुष्परिणाम प्रत्येक को भुगतना पड़ता है। दूसरे राज्य से पक्षी बुलाए गए, तब जाकर राज्य की कृषि-व्यवस्था सही हो पाई।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

अध्यात्म पथ के नैष्ठिक आधार

इस जीवन के तीन सौभाग्य बताए गए हैं, मनुष्य जन्म, महापुरुषों का संसर्ग और आत्मकल्याण की अभीप्सा। समर्थ गुरु के संरक्षण में आते ही पहले दो उद्देश्य तो पूरे हो जाते हैं, तीसरे को गति देनी होती है, सिद्ध करना होता है। परिवार-समाज में रहते हुए अपने सांसारिक दायित्वों को पूरा करते हुए आत्मकल्याण के महत् उद्देश्य को पूरा करना होता है।

इसके लिए नित्य रूप में न्यूनतम पात्रता, पावनता और पवित्रता के अर्जन की बात कही गई है। मन, वचन व कर्म से हर दिन, हर पल साधक से अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का नैष्ठिक प्रयास अभीष्ट रहता है।

इसके लिए हर पल होश में रहने की आवश्यकता है, उपासना, साधना व आराधना का जो क्रम निर्धारित है, उसका पालन करते रहें। उपासना में तीन ही माला सही, लेकिन वे पूरी दृढ़ता एवं तन्मयता के साथ होनी चाहिए, जिसकी परिधि में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीरों को समेटते हुए, अपने पूरे व्यक्तित्व के आमूलचूल परिवर्तन की आधारभूमि तैयार हो रही हो।

साधना में चौबीस घंटे मन पर सजग निगाह रखने की आवश्यकता रहती है। देखना पड़ता है कि कहीं निर्धारित दिनचर्या एवं साधना क्रम में आलस्य-प्रमाद तो प्रवेश नहीं कर रहा, प्रलोभनों के बहकावे में भटक तो नहीं रहा। इसे बारंबार अपने अभीष्ट पथ पर केंद्रित करने का अभ्यास करना पड़ता है।

सभी आध्यात्मिक मार्गों में पावनता भरे नैष्ठिक प्रयास पर बल दिया गया है, चाहे वह कर्मयोग हो या ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग। यदि जीवन कर्मप्रधान है तो ध्यान रहे कि हर कर्म पूजा की तरह करने का प्रयास हो, जिसके आदि, अंत व मध्य में प्रभु का सुमिरन जुड़ा हो तथा जिसका फल उन्हीं को अर्पित हो रहा हो।

कहीं से अपना क्षुद्र अहं व संकीर्ण स्वार्थ बीच में तो नहीं आ रहा। तभी कर्मयोग सधेगा और चित्तशुद्धि का माध्यम बनते हुए आत्मजागरण एवं कल्याण का हेतु बनेगा।

यदि ज्ञानमार्ग पर बढ़ रहे हैं, तो सदैव आत्मचिंतन में निमग्न रहें। देह-इंद्रिय व मन आदि उपकरण मात्र हैं, इस विवेक-वैराग्य के साथ अध्यात्म-केंद्रित जीवन जिएँ। यदि भक्तिमार्ग पर बढ़ रहे हैं, तो शरणागत भाव से प्रभु को हर श्वास में, हर कर्म में, हर चेष्टा में अनुभव करें व ईश्वरपरायण जीवन जिएँ। हर पल ईश्वर की उपस्थिति को अनुभव करें, तथा अपने विचार, भाव व क्रियाओं के स्तर को उन्हीं के अनुरूप पावन एवं गरिमामय बनाए रखें।

यदि राजयोग के पथ पर अग्रसर हैं, तो महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत यम-नियम के अंतर्गत दस सूत्रों का यथायोग्य पालन करें, जो हैं—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान। आसन-प्राणायाम के साथ इंद्रियों व मन का निग्रह करते हुए प्रत्याहार को साधें, तथा अपने चित्त को एक

बिंदु पर स्थिर करते हुए नित्य ध्यान का अभ्यास करें।

इस तरह हर मार्ग में पावनता, पवित्रता, एकाग्रता एवं एकनिष्ठा पर बल दिया गया है। यदि मार्ग में व्यतिरेक आ रहे हों, तो पवित्रता के लिए प्रार्थना करें।

जहाँ अपना पुरुषार्थ कमजोर पड़ रहा हो, वहाँ समर्थ प्रभु का सहारा लेने, अवलंबन लेने में कैसा संकोच। वे तो हमेशा ही सच्चे साधकों, अभीप्सुओं की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। उनके साथ उनके दूत हमेशा भक्त जनों को तारने के लिए अपना आँचल फैलाए बैठे होते हैं। आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में किया गया कोई भी सच्चा प्रयास, प्रार्थना, निवेदन कभी निष्फल नहीं जाते, बल्कि इनका प्रत्युत्तर सुनिश्चित रूप से मिलकर रहता है।

यदि जीवन-साधना के पथ में पीछे कुछ गलतियाँ हुई हैं, तो उनको लेकर मन में कुंठा न पालें। उनको लेकर कुढ़ते न रहें। खुले मन से अपने समर्थ गुरु, अपने कृपालु प्रभु के सामने दिल खोल कर अपनी कथा-व्यथा बयान करें और नए संकल्प के साथ, दृढ़ कदमों के साथ फिर आगे बढ़ने का निश्चय करें।

मान कर चलें कि साधना-पथ में विचलन, फिसलन व विषमताओं का आना स्वाभाविक है। यहाँ पर साधक को कदम-कदम पर अनगिनत अग्निपरीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। आखिरकार वह जन्म-जन्मांतरों की वासनाओं, आदतों व संस्कारों से जूझ रहा होता है।

अचेतन की सूक्ष्म वासनाओं का खेल बहुत मायावी होता है, इनके औचक प्रहार कब लापरवाह साधक को साधना-पथ से डिगा दें, कह नहीं सकते। इसमें सदा खतरा बना रहता है—अचेतन के अँधेरे कोने में छिपे कुसंस्कारों के समूह कब अचेत पथिक पर टूट पड़ें, साधक को गहरे विषाद में धकेल दें। आश्चर्य नहीं कि अध्यात्म पथ एक गुरुतर दायित्व से भरा हुआ मार्ग है, जिसे शास्त्रों में छुरे की धार पर चलने के समान कष्टसाध्य कहा गया है।

अतः प्रलोभनों की प्राणहंता माया से सावधान रहें। पता नहीं ये कब आकर साधक को बहला-फुसलाकर अपने आगोश में ले लें। यदि साधक सजग नहीं है, तो फिर ये साधक की सुख-भोग लिप्सा के साथ बल पाकर नागपाश बनकर उसे जकड़ लेते हैं और उसका सारा प्राण निचोड़ कर ही छोड़ते हैं।

अतः मन व इंद्रियों की सुख-भोग की लिप्सा से सदा सजग-सावधान रहें और अपने आत्मानुसंधान के सत्य पथ पर अडिग बने रहें। यह पथ ही साधक के लिए अनुगमन योग्य होता है।

निस्संदेह रूप में साधना-पथ पर अखंड सजगता की आवश्यकता होती है, अनवरत अपने इष्ट पर ध्यान केंद्रित रखते हुए मन व माया की प्रकृति को समझते हुए, कठोर कदमों की आवश्यकता रहती है।

आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार में उच्चतम मानदंडों के साथ साधक अपने साधना-पथ पर बढ़ता है और ईश्वरभजन के साथ आत्मतत्त्व पर विचार करता है। सतत आत्मचिंतन में निमग्न रहता है।

नैतिकता योगसाधक के लिए दिखावे, फैशन या सामाजिक विवशता की वस्तु न होकर उसकी प्राणवायु की तरह होती है, जो उसे अध्यात्म पथ के विराट साम्राज्य में प्रवेश दिलाती है। यह नैतिकता ओढ़ी हुई नहीं होती, बल्कि स्व-विवेक पर आधारित आत्मानुशासन के आध्यात्मिक गुण से युक्त होती है। ❑

मृतात्मा का अदृश्य सहयोग

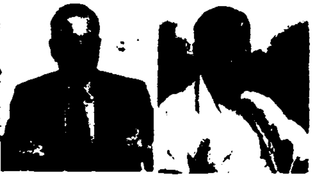

बात सन् 1944 के उन दिनों की है, जब रंगून (म्यांमार, बर्मा) में शरदचंद्र चटर्जी अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'देवदास' लिख रहे थे। यह दूसरे विश्वयुद्ध का समय था। पुणे के एक क्रांतिकारी संभाजी नीलकंठ गोखले भी उन दिनों अपने एक परिचित प्रमथनाथ बसु के साथ रहते थे। उस समय अनेक भारतीय, भारत में राज कर रही गोरी सरकार की सजा के तौर पर बर्मा में या तो जेल में थे, निर्वासन में थे या स्वनिर्वासित थे। कुछ आजाद हिंद फौज आदि के लिए भी काम कर रहे थे। गोखले भी आजाद हिंद फौज से जुड़े थे।

सितंबर का महीना था। अचानक संध्याकाल में फौजी सायरन बजा। सायरन की आवाज सुनते ही धड़ाधड़ दुकानें बंद होने लगीं। लोग सुरक्षित स्थानों की ओर, विशेष रूप से फौजी बमबारी से बचने के लिए बनाए गए बंकरों की ओर भागने लगे। उन दिनों जापानी विमान रंगून, मांडले और लाशो आदि बर्मी नगरों पर बमबारी कर रहे थे।

इस भगदड़ में बसु और गोखले साथ-साथ थे। वे एक पैगोडा (बौद्ध धर्मस्थल) के करीब बने तीन बंकरों में से एक में घुसने लगे तो देखा कि उसमें पहले से ही काफी भीड़ है। तभी अंदर से एक युवती की आवाज आई—"अरे कहाँ घुसे चले आ रहे हैं, आप दोनों।"

गोखले और बसु ने भीतर झाँका। उनकी नजर एक सुंदर, मगर मासूम-सी बर्मी युवती पर पड़ी, जिसने अँगरेजी में डाँटा था। वे लोग वापस पलटे और दूसरे बंकर की ओर मुड़े। बसु को हँसी आ गई। गोखले ने गंभीरता से पूछा—"तुम हँसे क्यों?" बसु बोले—"वह लड़की अपनी वूली जैसी थी। वूली भी मुझे अक्सर ऐसे ही लहजे में डाँटती है।" उन्हें दूसरे बंकर में जगह मिल गई।

कुछ ही देर बाद बमबारी प्रारंभ हो गई। बंकर के आस-पास भी बम गिरते। धरती बार-बार बुरी तरह हिलती। सब लोग साँस रोके, दुबके हुए बैठे थे। करीब एक घंटे बाद पता चला कि जापानी विमान वापस चले गए हैं और अब बमबारी का कोई खतरा नहीं है। बसु और गोखले बाहर आए तो देखा कि वह बंकर, जिसमें वे पहले जा रहे थे और जिसमें वह बर्मी युवती थी, बमवर्षा में बुरी तरह तबाह हो गया है। उसके भीतर के सभी लोग मारे जा चुके हैं।

देखा कि उस युवती का क्षत-विक्षत शव अन्य शवों के साथ बंकर के बाहर पड़ा हुआ है। बसु को बड़ा दु:ख हुआ। अगर वह लड़की डाँटकर न रोकती तो उन दोनों की लाश भी यहाँ पड़ी होती। भावप्रवण हुए बसु युवती के फटे किमोनो (बर्मी पोशाक) का एक टुकड़ा लेकर घर पहुँचे और एक ताबीज में बंद कर अपनी पुत्री वूली के गले में पहना दिया।

उस समय वूली नामक यह लड़की काफी छोटी थी। बाद में समय गुजरा। देश आजाद हुआ। बात सन् 1972 की सरदियों की है। देवयानी नामक एक युवती इंडियन एयरलाइंस में एयर होस्टेस की नौकरी कर रही थी।

एक रात वह एयर इंडिया द्वारा अनुबंधित मुंबई के एक होटल में रुकी थी। जिस विमान पर वह तैनात थी, उसे सुबह लंदन के लिए उड़ान

भरनी थी और देवयानी को उस विमान में ड्यूटी करनी थी।

वह सोई थी कि लगभग आधी रात में उसके दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। उसकी आँख इस दस्तक से खुल गई। उसने कुछ क्षण कान लगाए। फिर दस्तक पड़ी। देवयानी अनुमान लगाने लगी, इतनी रात में कौन हो सकता है। इसके बाद दरवाजे पर जोरों से हाथों की थाप पड़ी और देवयानी के कानों ने सुना कि किसी महिला ने 'देवयानी-देवयानी' पुकारा है। असमंजस जैसी हालत में देवयानी उठी, अपने गाउन को व्यवस्थित किया और दरवाजा खोल दिया।

देखा तो एक युवती दरवाजे पर खड़ी है, जो देखने में बर्मी लगती है और जिसने बर्मी किमोनो पहन रखा है। देवयानी ने उसकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। युवती भी संभवत: जल्दी में थी, अच्छी अँगरेजी में बोली—"आज की उड़ान में आपकी जान को खतरा है। प्रयास कीजिए कि आज आप अपनी निर्धारित ड्यूटी पर न जाएँ। मैं आपको आगाह करने आई हूँ, वैसे आपकी मरजी है।"

देवयानी को हैरत हुई, उसने सँभलकर पूछा—"आप कौन हैं!" लेकिन सेकंडों में ही वह युवती नीचे जाने वाली सीढ़ियों पर लापता हो चुकी थी। देवयानी थोड़ी डर-सी गई। उसने दरवाजा बंद किया और वापस बिस्तर में घुस गई। वह उस युवती के बारे में सोचती रही, कौन थी, कहाँ से आई, उसे खतरे के बारे में कैसे पता आदि-आदि। देवयानी को नींद नहीं आई। काफी सोच-विचार के बाद उसने सोचा कि ड्यूटी रद्द की जाए। युवती की बात का परीक्षण कर लेने में बुराई ही क्या है।

उसने अपने दफ्तर फोन कर बोल दिया कि उसकी तबीयत खराब है और वह ड्यूटी पर सुबह हाजिर न हो सकेगी। निर्धारित समय पर विमान ने उड़ान भरी, लेकिन वह विमान लंदन न पहुँच सका। रास्ते में ही दुर्घटनाग्रस्त हो गया, विमान में सवार सभी यात्री मारे गए। यह खबर बंबई (मुंबई) के अखबारों में प्रमुखता से छपी कि उस विमान में एयर होस्टेस के रूप में देवयानी की ड्यूटी निर्धारित थी और किसी कारण से उस दिन वह ड्यूटी पर नहीं थी।

देवयानी का पूरा नाम देवयानी बसु था और वह प्रमथनाथ बसु की वही वूली नामक लड़की थी, जिसके गले में प्रमथनाथ ने बंकर में मृत बर्मी युवती के किमोनो का टुकड़ा ताबीज में बंद कर पहनाया था। यह संयोग नहीं है। भावनात्मक रूप से जुड़े हुए लोग मरने के बाद भी अपनी सामर्थ्यानुसार सहयोग करते हैं। ❑

अनुचित के उन्मूलन के साथ-साथ सृजन के लिए अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित की जाती हैं। नींव खोदना ही काफी नहीं, महल की दीवार भी तो चुननी पड़ेगी। ध्वंस के साथ सृजन और ऑपरेशन के साथ मरहम-पट्टी और सिलाई, सफाई का प्रबंध अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। सो समयानुसार वे कथाएँ भी जल्दी ही सामने आने वाली हैं। अज्ञान, अभाव और अशक्ति के तीनों मोर्चों पर अपनी सेना कमान सँभालेगी।

—परमपूज्य गुरुदेव

आत्मबोध से परमानंद

धन के अभाव में एक गरीब व्यक्ति दुःखों से भरा जीवन व्यतीत कर रहा था। धन के अभाव में वह रोजी-रोटी आदि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी असमर्थ था। एक दिन अचानक उसके मन में यह विचार आया कि उसे किसी सिद्ध महात्मा से मिलना चाहिए और उनसे धन पाने का कोई उपाय जानना चाहिए। मन में यही विचार लिए वह व्यक्ति एक महात्मा के पास पहुँचा और बोला—"महाराज! मैं धन के अभाव में बहुत दुःखी हूँ और कष्ट भोग रहा हूँ। आप ऐसी कृपा करें कि मैं धनी हो जाऊँ।"

महात्मा जी को उस पर दया आ गई और उन्होंने अपने पास रखी हुई एक पारसमणि उसे देते हुए कहा—"जाओ इस पारसमणि से जितना चाहो, सोना बना लेना।" पारसमणि पाकर वह दरिद्र-गरीब और दुःखी व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और पारसमणि लेकर अपने घर आ गया। उस पारसमणि से उसने बहुत सारा सोना बनाया और सोना पाकर वह धनी हो गया। धन से उसकी रोटी, कपड़ा, मकान आदि जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ बखूबी पूरी होने लगीं, पर उसे शांति और संतोष प्राप्त नहीं हो सका।

बहुत सारा धन प्राप्त कर वह बहुत धनी हो गया। वह अच्छे सुस्वादु भोजन करने लगा, अच्छे वस्त्र पहनने लगा, अच्छे मकान में रहने लगा। भोग-विलास की सारी वस्तुएँ उसने धन से खरीद लीं और उनका उपयोग करने लगा, पर अभी भी उसके मन में शांति और प्रफुल्लता नहीं थी। क्यों? क्योंकि अब उसे अमीरी का दुःख सताने लगा। वह अमीर से और अमीर होने की चिंता में रहने लगा। उसे धन चोरी होने की चिंता सताने लगी। धन सँभालने और अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा करने की चिंता में उसका सुख-चैन जाता रहा।

एक दिन हारकर वह फिर उन्हीं महात्मा जी के पास गया और बोला—"महाराज! आपकी कृपा से मुझे धन भी प्राप्त हो गया और मेरी गरीबी भी दूर हो गई। आपने मेरी गरीबी तो दूर कर दी, पर फिर भी मैं सुखी नहीं हो सका। मैं यह नहीं जानता था कि गरीबी में ही नहीं, बल्कि अमीरी में भी दुःख होता है। मुझे अब अमीरी के दुःख ने घेर लिया है। कृपया कर आप मुझे इन दुःखों से बचाइए। हे महाराज! आप मुझे ऐसा सुख दीजिए, जो गरीबी और अमीरी में बराबर मिले और जो मृत्यु के समय भी कम न हो।"

महात्मा जी बोले—"ऐसा सुख धन-दौलत एवं विषय-भोगों से नहीं, बल्कि आत्मा से निस्सृत होता है। ऐसा सुख सत्-चित्-आनंदस्वरूप ईश्वर से ही प्राप्त होता है। इंद्रियों से प्राप्त सुख, विषय-भोगों से प्राप्त सुख क्षणभंगुर है और उस सुख में सदैव दुःख निहित है, पर जो सुख परमात्मा का अपनी आत्मा में ध्यान करने से आत्मा से निस्सृत होता है, वह सुख शाश्वत है और वह सदैव बना रहता है। धन-धान्य व भौतिक संसाधनों की बहुलता हो या अल्पता, हर स्थिति में व्यक्ति, सुखी रहता है, आनंदित रहता है।" यह कहकर महात्मा जी ने उसे आत्मज्ञान का उपदेश देकर आत्मदर्शन कराया और उसके बाद वह व्यक्ति सदा सुखी और आनंदित रहने लगा।

वास्तव में उक्त कहानी का सार संदेश यही है कि सच्चा व शाश्वत सुख आत्मज्ञान में है, आत्मबोध

में है। अपार धन-वैभव के बीच होते हुए भी जो सुख सिद्धार्थ को प्राप्त नहीं हो सका था, वह सुख उन्हें आत्मबोध होने पर अपने अंदर से ही प्राप्त होने लगा।

जो सिद्धार्थ रोगी, वृद्ध और मृत व्यक्ति को देखकर कभी दु:खी हो जाते थे, वही सिद्धार्थ बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद, आत्मबोध हो जाने के बाद परम शांति में, परमानंद में निमग्न हो गए। उनका रोम-रोम आनंद से आप्लावित हो उठा। आत्मबोध पाकर महावीर भी वह नहीं रहे, जो वे एक राजकुमार के रूप में थे।

वे भी आत्मबोध से निस्सृत आनंद में मग्न हो गए। सूर, तुलसी, मीरा, रैदास, नानक, नामदेव, एकनाथ आदि संत सदैव आत्मबोध से निस्सृत आनंद में मग्न रहे, निमग्न रहे।

आत्मज्ञान, आत्मबोध का परिणाम है—आनंद और परमानंद। आत्मज्ञान अथवा आत्मबोध तब होता है, जब 'मैं कौन हूँ ?' इस प्रश्न का आपको उत्तर मिलता है और अपने अंतरतम में यह अनुभव होता है कि आप देह में हैं, पर आप देह नहीं हैं, आप शरीर में हैं, पर आप शरीर नहीं हैं। आप सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा के अंश हैं और यही आपका वास्तविक स्वरूप है।

इस वास्तविक स्वरूप में हमारी सदैव के लिए स्थिति ही आत्मबोध है और इस स्वरूप स्थिति में ही आनंद है, परमानंद है, परम शांति है, परम विश्रांति है, परम विश्राम है और परम सुख है।

आत्मबोध में अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति जाग्रति होती है, जो सदैव बनी रहती है और वह जाग्रति कभी जाती नहीं, कभी मिटती नहीं, कभी छूटती नहीं। जब 'मैं एक शरीर हूँ' यह अनुभव सदा के लिए तिरोहित हो जाता है, विलुप्त हो जाता है, तब 'मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ', 'मैं सत्-चित्-आनंदस्वरूप ईश्वर का अंश हूँ'—यह भाव स्थायी हो जाता है और इस भाव में स्थित हो जाने पर साधक सुख और दु:ख, दोनों से परे हो जाता है।

न तो दु:ख उसे दु:खी करता है और न सुख उसे हर्षित करता है; क्योंकि स्वरूप स्थिति में वह देहभाव में होता ही कहाँ है ? वह तब देह में होते हुए भी देहातीत हो जाता है। इंद्रियों से कुछ ग्रहण करते हुए भी इंद्रियातीत होता है। इसलिए न तो दु:ख उसे दु:खी करता है न ही सुख सुखी करता है। सुख-दु:ख से परे आत्मिक आनंद में वह मग्न होता है, निमग्न होता है।

वह संसार में रहते हुए भी संसार में लिप्त नहीं होता, आसक्त नहीं होता। वह अनासक्त, निर्लिप्त रहकर, कर्त्तापन की भावना से रहित होकर हर कार्य करता है। इसलिए उसके कर्म से कोई नया बंधन, नया संस्कार नहीं उपजता। वह पल-पल भगवदानुभूति, आनंदानुभूति में जीता है और अंतत: जन्म-मरण के बंधन को तोड़कर सदैव के लिए मुक्त हो जाता है।

धन-धान्य व भौतिक वस्तुओं, भोगों से क्षणिक इंद्रियजन्य सुख प्राप्त होता है, पर उस सुख में सदैव दु:ख निहित होता है। अत: वह सुख, सुख होकर भी दु:ख ही है और दु:ख तो दु:ख है ही। सुख भी भोग है और दु:ख भी भोग है और जो भोग है, उसमें दु:ख अवश्य है। अस्तु हमें दु:ख और सुख से परे आनंद की उपलब्धि करनी चाहिए— जो आत्मबोध की अवस्था में आत्मा से निस्सृत होता है, परमात्मा से निस्सृत होता है।

भगवान कृष्ण आत्मबोध से आनंदप्राप्ति का उपाय बताते हुए गीता में कहते हैं कि मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरंतर परमात्मा में लगावे। वश में किए हुए मन वाला योगी इस प्रकार आत्मा को निरंतर मुक्त परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहने वाली परमानंद की

परकाष्ठा रूप शांति को प्राप्त होता है। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अनंत आनंद का अनुभव करता है। वह योगी अपनी आत्मा को संपूर्ण भूतों में स्थित और संपूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

जो संपूर्ण भूतों में मुझ वासुदेव को ही देखता है और संपूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अंतर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता। ऐसे इस सच्चिदानंदघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को आनंद प्राप्त होता है। यही आत्मबोध से परमानंद की यात्रा है। ❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 53 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003

Email-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

यथा राजा तथा प्रजा

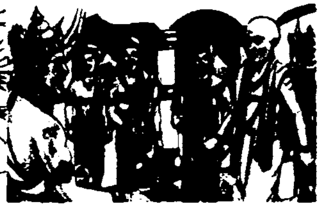

बात प्राचीन समय की है। प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इंद्रधुम्न, जन और बुडिल आदि भारतवर्ष के पाँच वैदिक पंडित एक आध्यात्मिक गोष्ठी में बैठे थे। 'वैश्वानर आत्मा या ब्रह्म क्या है?' यही उस गोष्ठी में चर्चा का विषय था। वे सभी पंडित घंटों इस विषय पर चर्चा करते रहे, पर 'आत्मा, ब्रह्म क्या है, कैसा है?' इसको लेकर वे किसी निर्णय या निष्कर्ष तक नहीं पहुँच सके।

अंत में वे सभी पंडित इस प्रश्न के उचित समाधान को प्राप्त करने के लिए उद्दालक मुनि के पास पहुँचे। उन दिनों उद्दालक मुनि भी आत्मा और ब्रह्मविषयक चिंतन में लगे हुए थे, पर जब पाँचों पंडितों ने आत्मा और ब्रह्म संबंधी प्रश्न को उद्दालक मुनि के समक्ष रखा तो वे बोले—"मैं आप पाँचों महानुभावों का सहर्ष स्वागत करता हूँ। आप ब्रह्मज्ञान की इच्छा से यहाँ पधारे हैं, यह अति हर्ष की बात है, पर अभी मैं स्वयं ही ब्रह्मज्ञान की खोज में लगा हूँ, इसलिए मेरा यह मत है कि हम सभी इस प्रश्न को लेकर कैकय देश के राजा अश्वपति के पास चलें। सुना है वे ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं।"

उद्दालक मुनि एवं वे पाँचों पंडित कैकय देश जा पहुँचे। वे सभी राजा अश्वपति से मिले। राजा अश्वपति स्वयं ब्रह्मज्ञानी थे, आत्मज्ञानी थे। वे विश्व के कण-कण में, जड़-चेतन में, नर-नारी में, धरती-आकाश में, सूर्य-चंद्र में व्याप्त सर्वव्यापी ब्रह्म को जानते थे। राजा ने सभी अतिथियों का यथोचित सत्कार किया। अतिथियों के विश्राम करने के उपरांत राजा ने स्वयं आकर उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया।

वे सभी विद्वान भोजन के विषय में बड़े संयमी थे। वे सदैव शुद्ध साधनों से अर्जित अन्न का ही भोजन करते थे; क्योंकि उन्हें यह ज्ञात था कि 'जैसा खाए अन्न-वैसा बने मन।' उन सभी का जीवन सात्त्विक था, भोजन सात्त्विक था। इसलिए वे सात्त्विक, धार्मिक व्यक्ति के यहाँ ही भोजन ग्रहण करते थे। तामसी और राजसी व्यक्ति के यहाँ भोजन करना तो उन्हें बिलकुल पसंद न था।

उद्दालक मुनि ने कहा—"राजन्! भोजन के निमंत्रण के लिए आपका धन्यवाद है, पर राजा का भोजन हमें स्वीकार नहीं।" राजा अश्वपति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे दुविधा में पड़ गए और सोचने लगे कि इन अतिथियों द्वारा भोजन स्वीकार न करना तो मेरे लिए व मेरे राज्य के लिए बड़ी लज्जा की बात है। तब उन्होंने बड़ी विनम्रता से पूछा—"मुनिवर भोजन अस्वीकार करने का भला क्या कारण है? आपका आतिथ्य करना, भोजन कराना तो मेरा अहोभाग्य है। फिर आप हमें इस सौभाग्य से वंचित क्यों कर रहे हैं? क्या मैं इसका कारण जान सकता हूँ?"

उद्दालक मुनि बोले—"राजन्, हम सात्त्विक जीवन बिताते हैं, सात्त्विक साधनों से प्राप्त अन्न ग्रहण करते हैं, पर आप राजा हैं; शासक हैं। आपके राज्य में सज्जन, दुर्जन, श्रेष्ठ, कृपण सभी प्रकार के लोग निवास करते हैं और उन सबकी कमाई का धन, कर के रूप में आपके राजकोश में आता है।

वह धन अपवित्र भी है। अस्तु उस अपवित्र धन से प्राप्त अन्न का भोजन करने से हमारा मन भी अपवित्र हो जाएगा और मन के अपवित्र हो जाने से, मलिन हो जाने से हमारी तपस्या में, भगवद्ध्यान में, समाधि में विघ्न पड़ेगा। अत: ऐसा रजोगुणी, तमोगुणी भोजन हमें स्वीकार नहीं।''

अश्वपति स्वयं एक धर्मनिष्ठ और चरित्रवान राजा थे। वे पवित्र धन और पवित्र भोजन के संबंध को बखूबी समझते थे। वे स्वयं भी आत्मतत्त्व या ब्रह्मतत्त्व के चिंतन, खोज व अनुसंधान में लगे रहते थे।

फलस्वरूप 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत के अनुसार उन्हें अपनी प्रजा के भी सदाचारी होने का विश्वास था और अपने उसी विश्वास के बल पर राजा अश्वपति ने उन सभी मुनियों के समक्ष बड़े ही गर्व और आत्मविश्वास के साथ घोषणा करी—

नहीं चोर, कंजूस नहीं, सब शराब से दूर।
नित्य हवन की सुगंध से घर-घर है भरपूर॥
शिक्षित-संस्कारी सभी, कहीं नहीं व्यभिचार।
अश्वपति के राज्य में सदाचार विस्तार॥

राजा अश्वपति पुन: बोले—''हे मुनिजन! मेरा कैकय देश एक आदर्श राज्य है। यह अन्य राज्यों की तरह नहीं है। मेरे राज्य में ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जो इसे औरों से अलग करती हैं। मैं बड़े गर्व और विश्वासपूर्वक यह घोषणा करता हूँ कि मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई दुराचारी नहीं। सभी नर-नारी समृद्ध हैं तथा दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान देखते हैं।

''वे किसी के धन को लोभ या चुराने की भावना से नहीं देखते। न कोई किसी व्यक्ति के धन का लोभी, लालची या चोर है और न ही कोई सरकारी संपत्ति या कर की चोरी करता है। कोई तस्कर भी नहीं है।

''दूसरी विशेषता यह है कि कोई कंजूस भी नहीं है। हर धनवान व्यक्ति ईमानदारी, सच्चाई व मेहनत से प्राप्त धन का उपयोग करने में उदार है। वह अपने धन का उपयोग सिर्फ स्वयं के लिए नहीं करता, बल्कि वह सामाजिक परोपकार और सर्वहितकारी कार्यों में भी धन लगाता है और वह अपने सुखभोग में भी धन व्यय करता है।

''तीसरी विशेषता यह है कि मेरे राज्य में कोई शराबी नहीं; क्योंकि मेरे राज्य में यह हर कोई जानता और समझता है कि मद्यपान से स्वास्थ्य और धन, दोनों की हानि होती है, जिससे व्यक्ति रोगी और दरिद्र होता है। यहाँ हर कोई यह भली भाँति जानता है कि मद्यपान से मन बिगड़ता है, मन में बुरे विचार आते हैं, मन में बुरे विचार आने से व्यक्ति बुरे कर्म करने को प्रेरित होता है और बुरे कर्मों में प्रवृत्त होता है।

''मन बिगड़ने से पाप उत्पन्न होता है और पापकर्म करने से व्यक्ति की दुर्गति होती है। मद्यपान के इस परिणाम को सभी जानते हैं, इसलिए यह पारिवारिक या सामाजिक व्यसन अश्वपति के राज्य में नहीं है।''

राजा की उक्त घोषणा को उद्दालक मुनि एवं पाँचों विद्वान बड़े ध्यान से सुन रहे थे। राजा ने अपना कथन जारी रखा और कहा—''मद्यपान के व्यसन से व्यक्ति का ही नहीं, अपितु पूरे परिवार का, कुल का, मान का, समाज का नाश होता है। यदि राजा मद्यपान में डूबा हो तो उसके साथ-साथ सारे राष्ट्र का नाश हो जाता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं चारित्रिक नाश हो जाता है।''

राजा ने अपनी ओजस्वी वाणी से चौथी विशेषता बताते हुए कहा—''मेरे राज्य में घर-घर में प्रतिदिन यज्ञ-हवन होता है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो नित्य-नियमपूर्वक यज्ञ-हवन न करता हो।

"यज्ञ-हवन की अग्नि और सुगंध घर-घर में, गली-गली में, नगर-नगर में जलवायु को, वातावरण को प्रभावित और परिष्कृत करती है। इससे मेरे राज्य के नर-नारी नीरोग, स्वस्थ और दीर्घायु हैं, अग्नि के समान तेजस्वी और सुखी हैं।

"यज्ञ व्यक्ति के तन-मन और आत्मा को परिष्कृत करता है, जिससे व्यक्ति के मन में सद्भाव व सद्विचार उत्पन्न होते हैं और वह सत्कर्म में प्रवृत्त होकर सुखी और समृद्ध होता है। उसके अंदर ओजस्, तेजस् और वर्चस् की वृद्धि होती है। मेरे राज्य में यज्ञ-हवन से घर-घर स्वर्ग बना हुआ है। वेदमंत्रों की मधुर गूँज और यज्ञ की सुगंधित वायु सबके शरीर व मन को अनवरत पावन बना रही है।"

राजा की बातों को सुनकर सभी मुनि अपने को धन्य मान रहे थे कि हम आज एक ऐसे आदर्श राज्य को साक्षात् देख रहे हैं, जो सचमुच धरती पर स्वर्ग की तरह है और यहाँ रहने वाले लोग सचमुच देवतुल्य हैं।

राजा की बातें सुनकर सभी मुनियों के दोनों प्रयोजन स्वयमेव सिद्ध हो रहे थे। एक तो वे आदर्श राज्य का दर्शन कर रहे थे और दूसरा एक ब्रह्मज्ञानी राजा का भी साक्षात्कार कर रहे थे। उनके लिए यह अनुभव सचमुच 'एक पंथ दो काज' की तरह ही था।

उद्दालक मुनि ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा—"कहिए राजन्! और कौन-सी विशेषता है आपके राज्य की?" राजा अश्वपति ने पाँचवीं विशेषता बताते हुए कहा—"मान्यवर! मेरे राज्य में कोई अशिक्षित नहीं, अनपढ़ नहीं। सभी साक्षर और विद्वान हैं। उनमें भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी है। जिससे उनके व्यक्तित्व का समग्र विकास संभव हो पाता है। अनिवार्य शिक्षा और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था राज्य की ओर से होने के कारण सभी नर-नारी विद्वान हैं। विद्याविहीन, ज्ञानहीन मनुष्य तो पशुतुल्य ही होता है। जब यहाँ साधारण नागरिक भी पढ़ा-लिखा है तो फिर दूसरों की तो बात ही क्या है।"

अंतिम विशेषता बतलाते हुए अश्वपति बोले—"अंतिम विशेषता तो विशेषताओं में भी विशेष है।" "वह क्या है राजन्!"—सहसा मुनि उद्दालक बोल पड़े।

तब अश्वपति बोले—"मुनिवर! वह विशेषता ऐसी है, जो संपूर्ण राष्ट्र व नर-नारी के उच्च चरित्र का प्रमाणपत्र भी है और वह यह है कि मेरे राज्य में कोई भी दुराचारी, व्यभिचारी नहीं है, कामी और चरित्रहीन नहीं है, बल्कि सभी जितेंद्रिय और संयमी हैं। सब पुरुष पत्नीव्रती हैं तथा स्त्रियाँ पतिव्रता हैं। जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं, तो व्यभिचारिणी स्त्री कैसे मिल सकती है?

"नर-नारी सभी संयमी जीवन जीते हैं। उन्होंने पवित्रता व सदाचार केवल पुस्तकों में नहीं पढ़े, बल्कि उन्हें अपने आचरण-व्यवहार में उतारा, अपनाया और जिया भी है। मेरे राज्य में 'व्यभिचार' शब्द केवल शब्दकोश में मिलेगा, किसी के व्यवहार में नहीं। यहाँ सर्वत्र सदाचार का प्रचार-प्रसार है। सभी पुरुष नारी को माता, बहन व बेटी तुल्य ही जानते हैं। उनकी दृष्टि व आचरण पवित्र हैं।

"ये सभी छह विशेषताएँ मेरे कैकय राज्य में, राजपुरुषों में, कर्मचारी-अधिकारियों में और सभी नर-नारियों में शोभायमान हैं। मुझे अपने ऐसे राज्य पर गर्व है। फिर आप मेरा भोजन स्वीकार क्यों नहीं करते? मेरी प्रजा धार्मिक व पवित्र है। मेरे राजकीय कोश में प्रजा से कर के रूप में एकत्रित धन भी पवित्र है। उस धन से बना भोजन भी पवित्र है। अतः कृपया करके भोजन स्वीकार कर मुझे आप सभी कृतार्थ कीजिए।"

मुनिवर उद्दालक सहित पाँचों मुनि, महाराज अश्वपति के मुख से एक आदर्श राज्य का वर्णन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा का निमंत्रण स्वीकार कर सहर्ष भोजन ग्रहण किया और विश्राम करने लगे। अगले दिन प्रातःकाल राजा से पुनः भेंट हुई।

अश्वपति ने सबको सादर प्रणाम किया, स्वागत किया और उचित आसन पर बिठाया; फिर निवेदन किया—"मैं एक महान यज्ञ करने वाला हूँ। कृपया आप सभी मुनिजन उस यज्ञ में पधारकर मुझे कृतार्थ करें। यह मेरा संकल्प है। आशा है आप सभी पधारकर यज्ञ को सुशोभित करेंगे; क्योंकि यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है।"

उद्दालक मुनि बोले—"राजन्! आपका आमंत्रण हमें सहर्ष स्वीकार है, पर हम जिस प्रयोजन से यहाँ आए हैं, पहले वह पूरा होना चाहिए।" राजा के विनयपूर्वक वह प्रयोजन पूछने पर उद्दालक मुनि बोले—"हमने सुना है कि आप वैश्वानर आत्मा को जानते हैं। आप ब्रह्म को जानते हैं अथवा उस आत्मा की या ब्रह्म की खोज में लगे हुए हैं। आपसे बढ़कर दूसरा ज्ञानी इस विषय में हमने कहीं नहीं सुना।"

राजा ने उनके निवेदन को सहर्ष स्वीकार किया, पर उन्होंने पहले आत्मा या ब्रह्मसंबंधी उन सभी मुनियों के विचार जानने चाहे, इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम पंडित प्राचीनशाल से पूछा—"आप किसे वैश्वानर आत्मा या ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करते हैं?"

प्राचीनशाल बोले—"मैं नक्षत्रों, तारों से चमकते हुए द्युलोक को आत्मा (ब्रह्म) मानकर उसकी उपासना और भक्ति करता हूँ।" तब राजा बोले—"यह चमकीला द्युलोक तेजोमय लोक है। यह उस वैश्वानर आत्मा के केवल सिर के तुल्य है। यह सारा वैश्वानर आत्मा नहीं, वरन उसका एक अंश मात्र है, एक भाग मात्र है। उसकी उपासना व परमेश्वर के आशीर्वाद से, भरपेट भोजन, सभी प्रिय वस्तुएँ आपको प्राप्त हैं तथा आपका कुल तेजस्वी है।"

फिर राजा ने सत्ययज्ञ से यही प्रश्न किया। उन्होंने सूर्य को वैश्वानर आत्मा मानकर उसकी उपासना करना बताया। अश्वपति ने उन्हें भी वही उत्तर दिया—"सूर्य तो उस वैश्वानर आत्मा या ब्रह्म का एक रूप है, संपूर्ण रूप नहीं है और न ही यह उसका एक प्रकाशमय रूप है। उसकी उपासना व परमात्मा के आशीर्वाद से आपके पास रथ हैं, सेवक हैं, उत्तम भोजन है और आपके कुल में ब्रह्मतेज है। यह सूर्य तो उस वैश्वानर आत्मा की (ब्रह्म की) आँख ही है।"

राजा ने इंद्रधुम्न से पूछा—"आप किसे वैश्वानर आत्मा (ब्रह्म) मानकर उसकी भक्ति करते हैं।" "मैं वायु की भक्ति करता हूँ।"—उन्होंने उत्तर दिया। उनका उत्तर सुनकर राजा बोले—"यह वायु भी वैश्वानर आत्मा का एक ही रूप है, पूरा रूप नहीं। उसकी भक्ति से आप भी संसार के सभी सुख भोगते हैं, ब्रह्मतेज आपके कुल में दिखाई देता है।"

तत्पश्चात उसी प्रश्न के उत्तर में चौथे विद्वान ने बताया—"वह आकाश को आत्मा (ब्रह्म) मानकर उसकी उपासना करते हैं।" पाँचवें विद्वान बुडिल ने जल को आत्मा और उसकी भक्ति, उपासना करना बताया। फिर उद्दालक मुनि ने पृथ्वी को वैश्वानर आत्मा कहा, किंतु उन सबका उत्तर अधूरा ही था।

राजा अश्वपति ने वैश्वानर आत्मा अर्थात ब्रह्म कौन है, कहाँ है, कैसा है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—"आप सब वैश्वानर आत्मा के मात्र एक-एक रूप अथवा अंश की उपासना भक्ति ही करते हैं।"

वे बोले—"उस वैश्वानर आत्मा को, ब्रह्म को विराट, विशाल और समग्ररूप में देखें। तारों से चमकता लोक-द्युलोक उस वैश्वानर आत्मा का, ब्रह्म का सिर है, सूर्य उसकी आँख है, वायु उसका प्राण है, आकाश धड़ है, जल वस्ति है, पृथ्वी पाँव हैं। इस प्रकार उस आत्मा को, ब्रह्म को सब प्राणियों में, आत्माओं में और सर्वव्यापी मानकर उसकी उपासना और भक्ति करनी चाहिए।"

राजा अश्वपति के उपदेश से सभी मुनि संतुष्ट और प्रसन्न हुए। ❑

यज्ञोपवीत का मर्म

शास्त्रीय परंपरा के अनुसार स्वाध्याय का अधिकार उसे ही है, जो यज्ञोपवीत धारण करता हो। इसे समझने के लिए पहले यज्ञोपवीत के अर्थ को जानना जरूरी है। यज्ञोपवीत दो शब्दों से मिलकर बना है—यज्ञ और उपवीत।

'यज्ञ' या 'यजन' का संबंध देवताओं की पूजा, संगतिकरण और दान से है। 'उपवीत' का माने होता है समीप या नजदीक। इस प्रकार दोनों शब्दों को मिलाकर यज्ञोपवीत का माने होता है, यज्ञ के समीप। यानी ऐसी वस्तु को धारण करना, जो हमें देवताओं के समीप ला बिठाती है यज्ञोपवीत कहलाती है।

शास्त्रों में देव-पूजा का अर्थ माता-पिता, गुरु-आचार्य और बड़ों की सेवा करना होता है यानी इन सभी पूज्यों का सम्मान और सही ढंग से मधुर व्यवहार आदि करना होता है। मनु, याज्ञवल्क्य, जाबालि, शंख आदि स्मृतिकारों ने देवपूजा का यही अर्थ किया है।

यज्ञ की दूसरी विशेषता संगतिकरण है। किसी भी काम को बुद्धिपूर्वक करने का नाम संगतिकरण है। दान—यज्ञ का तीसरा गुण है और इन तीनों गुणों से मिलकर ही यज्ञ संपूर्ण होता है।

यज्ञोपवीत यज्ञ के इस मर्म को समझने, धारण करने और हमेशा याद रखने का प्रतीक है। यों प्रकट तौर पर तीन धागे और नौ सूत्रों से बने यज्ञोपवीत में और भी कई विशेष बातें संकेत रूप में निबद्ध हैं, लेकिन मूल संदेश यज्ञ, दान और संगतिकरण को धारण करना ही है।

यज्ञोपवीत के संबंध में पहली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसके धारण करने का विधान कर्मसंगत है न कि जातिगत। वर्णाश्रम धर्म को लेकर इन दिनों कई मत-मतांतर प्रचलित हैं। कुछ लोगों के लिए उसे निषिद्ध ही समझा जाता है। वास्तव में ऐसा है नहीं। ऊँच-नीच और छोटे-बड़े की जो धारणा इस बारे में बना दी गई है, वह काल्पनिक और संदर्भ से काटकर देखी या प्रतिपादित की गई ही ज्यादा है। गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार व्यक्ति की जिस दिशा में प्रवृत्ति हो, उसमें निष्ठा और ईमानदारी से लगना ही वर्णाश्रम-व्यवस्था का मर्म है।

यज्ञोपवीत और उससे जुड़े कर्म वैदिक या भारतीय परंपरा के मर्म को उजागर करते हैं एवं उनके प्रति सही दृष्टि भी विकसित करते हैं। जो व्यक्ति धर्म, मर्यादा और वैदिक परंपरा का पालन कर सके या उसके लिए कटिबद्ध हो, वह किसी भी जाति या वर्ण का हो; यज्ञोपवीत का अधिकारी है। उसके लिए आचार-विचार की मर्यादा में रहना आवश्यक है।

धार्मिक व वैज्ञानिक, दोनों नजरिए से यज्ञोपवीत को हर व्यक्ति धारण कर सकता है। इस दायित्व को संपादित करने का कार्य माता-पिता को अपनी संतान के प्रति कर्त्तव्य-भावना से ही करना चाहिए। जो माता-पिता अपनी संतान को विद्या-अध्ययन में निरत रखना या किसी भी विषय में पारंगत बनाना चाहते हैं—उनके लिए कहा गया है कि वे अपनी संतान को सूत और रेशम के यज्ञोपवीत धारण कराएँ। अगर संतान में शौर्य और वीरता का विकास देखना चाहते हैं तो उसके लिए

विशिष्ट धातु जैसे स्वर्ण आदि से बनी जनेऊ धारण करने का विधान है।

व्यापार-व्यवसाय में लगने वालों के लिए रजत वर्ण अथवा सूत से बनी जनेऊ तथा सेवाकार्यों में लगने वालों के लिए यथेच्छा धातु या सूत से बनी जनेऊ पहनने की व्यवस्था है। यज्ञोपवीत के साथ यह नियम भी जुड़ा है कि जो कोई इसे धारण करे, वह नियमित रूप से शास्त्रों का अध्ययन और उपासना, अग्निहोत्र आदि कार्यों को करता रहे।

विभिन्न वर्गों और व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार कराने का अलग-अलग समय है।

अगर समय पर नहीं हो पाए तो उसे सामूहिक आयोजनों यज्ञ आदि के अवसर पर किया जा सकता है। इस संस्कार के बाद व्यक्ति को वेद-शास्त्र के विधिवत् अध्ययन का अधिकार मिल जाता है।

अधिकार का अर्थ है—वैदिक परंपरा की मूलधारा से जुड़ने और अपने संस्कारों को उनके अनुरूप ढालने की सुविधा। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र इस अधिकार के आधार पर प्राप्त अनुशासन में रहने की शिक्षा देते हैं। अतः सभी को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। ❑

घटना मुंबई की है। एक वृद्ध महिला लकड़ियों का एक गट्ठर सामने रखकर राह चलते लोगों से उसे सिर पर रखवाने में मदद माँग रही थी, परंतु कोई उसकी मदद को नहीं आया। तभी एक कोट-पैंट व टाई पहने सज्जन आते हुए दिखाई पड़े।

वृद्ध महिला चाहते हुए भी उनसे सहायता की पुकार नहीं कर सकी। उन सज्जन को लगा कि शायद वह महिला उनसे कुछ चाहती है तो उन्होंने रुककर उससे पूछा—"माँ! क्या कहना चाहती हो?" यह आत्मीय संबोधन सुनकर वृद्ध महिला की आँखों में आँसू आ गए और वह बोली—"मैं यहाँ से गुजरने वाले हर व्यक्ति से गट्ठर सिर पर रखवाने के लिए मदद माँग रही थी, पर कोई मेरी मदद को नहीं आया।"

उन सज्जन ने तुरंत वह गट्ठर उठाकर उसके सिर पर रख दिया। वह सज्जन और कोई नहीं, मुंबई न्यायालय के न्यायाधीश श्री गोविंद रानाडे जी थे। व्यक्ति अपने पद से नहीं, वरन सद्गुणों से महान बनता है।

अंधकूप है यह संसार, मात्र प्रभु ही करते पार

एक परमहंस महात्मा थे। पूर्वजन्म के प्रबल आध्यात्मिक संस्कार के कारण बाल्यावस्था से ही उनमें वैराग्य की भावना प्रबल थी। उनका मन संसार में रमने के बजाय सहसा भगवद्ध्यान में डूब जाया करता था। बचपन से ही वे घंटों ध्यान में बैठा करते थे और एक दिन वे एक संन्यासी से दीक्षा लेकर संन्यास धारण कर गृह-त्यागकर एकांत में भगवद्भजन, ध्यान करने लगे। नित्य भगवद्भजन, भगवद्ध्यान के फलस्वरूप मन निर्मल होते ही उन्हें भगवान की दिव्य अनुभूति होने लगी। संसार में रहते हुए भी उनमें संसार लेशमात्र भी न रहा।

उनके जीवन का पल-पल आध्यात्मिक आनंद और शांति में बीत रहा था। महात्मा जी के त्याग और तपस्या की चर्चा चहुँओर होने लगी थी। एक दिन अचानक उनके मन में तीर्थयात्रा करने का विचार आया और अगले ही दिन वे तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। कई तीर्थों का भ्रमण-दर्शन कर वर्षों बाद वे वापस लौट रहे थे। वे पैदल ही चल रहे थे। अचानक वे किसी गाँव के पास से गुजरने लगे। गाँव के बाहर एक बगीचा था।

वहाँ रुककर वे विश्राम करने लगे। थके होने के कारण वे गहरी नींद में चले गए, पर थोड़ी देर बाद ही शोर-शराबे के कारण उनकी नींद टूट गई। वे उठकर बैठ गए और देखा कि गाँव में बहुत लोगों की भीड़ जमा है और बाजे बज रहे हैं। उनके मन में कुतूहल हुआ कि इस गाँव में लोगों की भीड़ क्यों जमा है और बाजे क्यों बज रहे हैं?

वे बाग से निकलकर उस भीड़ की ओर चल पड़े और देखा कि वहाँ लोगों की भीड़ जमा है। कुछ लोग पंक्ति में बैठकर खाना खा रहे हैं तो कुछ लोग वहाँ बज रहे बाजों की धुन पर नाच रहे हैं। कुछ लोग घोड़े और हाथी पर सवार हैं। महात्मा जी के लिए ये सारी बातें किसी कुतूहल से कम न थीं; क्योंकि वे ऐसा घटनाक्रम पहली बार देख रहे थे।

अत: वहाँ खड़े एक व्यक्ति से उन्होंने पूछा—"यह भीड़-भाड़ कैसी है? क्या हो रहा है यह? किसी युद्ध की तैयारी तो नहीं हो रही?" महात्मा जी के भोलेपन पर वहाँ खड़े लोगों को हँसी आ गई। भीड़ में खड़े एक व्यक्ति ने कहा—"महात्मा जी, यहाँ बरात आई है। उसी का स्वागत-सत्कार हो रहा है। खा-पीकर लोग घोड़े व हाथी पर बैठकर अब बेटी वालों के घर जाने की तैयारी में हैं। बेटी वालों के द्वार पर दूलहा और बरातियों के पहुँचते ही इससे भी अधिक धूम-धड़ाका होगा।"

महात्मा जी ने कभी बरात देखी नहीं थी। उन्हें यह भी पता न था कि बरात होती क्या है। अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए उन्होंने पूछ ही लिया—"भैया! यह बरात होती क्या है?" उस आदमी ने कहा—"महाराज! हमारे गाँव में एक किसान की लड़की की शादी है। बरात में आए हुए लोग लड़के (वर) की तरफ से आए हैं, उन्हें ही बराती कहते हैं। शादी की खुशी में ही यहाँ बरात में आए लोगों का सत्कार हो रहा है, खाना-पीना, नाचना-गाना, धूम-धड़ाका हो रहा है।"

महात्मा जी ने फिर पूछा—"भैया भला यह शादी क्या होती है, कैसे होती है?" गाँववालों ने बताया—"महात्मा जी! दूलहा-दुलहन मंडप में आते हैं, बैठते हैं और फिर वे दोनों एकदूसरे के गले में जयमाला, पुष्पमाला पहनाते हैं, पंडित जी मंत्र पढ़ते हैं। दूलहा, दुलहन की माँग में सिंदूर भरता है और उनकी शादी होती है।" "शादी के बाद क्या होता है?"—महात्मा जी ने फिर पूछा। गाँववालों ने बताया—"शादी के बाद दूलहा-दुलहन एक साथ रहते हैं। दुलहन, दूलहे के घर चली जाती है। वह वहाँ दूलहे के साथ रहती है। दोनों गृहस्थी बसाते हैं और संसार का सुख भोगते हैं।"

महात्मा जी फिर सोचने लगे—"भला यह सुख क्या होता है? मुझे भी शादी के इस सुख को जानना चाहिए, पर पहले मैं शादी होती कैसे है, यह तो देख लूँ।" यह सोचकर महात्मा जी बरात के साथ चल पड़े। गाँववालों ने बरात के साथ-साथ महात्मा जी का भी स्वागत किया। महात्मा जी सदैव कंद-मूल, फल आदि ही आहार के रूप में ग्रहण करते थे, पर आज पहली बार वे बरातियों के साथ मसालेदार भोजन ग्रहण कर रहे थे। यद्यपि किसी भी व्यंजन का स्वाद वे पहचानते न थे, पर फिर भी नए तरह के व्यंजन खाकर उन्हें नया-नया और कुछ अलग महसूस होने लगा था।

अन्न का असर मन पर तो होता ही है, सो महात्मा जी के मन पर असर पड़ना भी स्वाभाविक था। भोजन के पश्चात महात्मा जी ने सबको नाचते-गाते देखा। महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीतों को सुना। रात को विवाह मंडप में जाकर शादी होती भी देखी। आधी रात तक यह सब कुछ होता रहा। उसके बाद बराती सो गए। महात्मा जी भी एक कुएँ के चबूतरे पर आकर लेट गए।

उस दिन उन्होंने भजन-पूजन, संध्यावंदन, भगवद्ध्यान, नामस्मरण आदि कुछ भी नहीं किया था। पेट सुस्वादु व्यंजनों से भरा था, जँभाई भी आ रही थी। उनका संध्यावंदन करने का मन भी नहीं हो रहा था। तामसी-राजसी व्यंजनों के कारण उनके मन में आलस्य हो आया। मन में बरात में देखे व सुने गए सारे दृश्य एक-एक कर उन्हें याद आ रहे थे और उन्हीं दृश्यों को याद करते हुए, मन की आँखों से देखते हुए वे गहरी निद्रा में चले गए।

दिन भर जो भी उन्होंने देखा-सुना था, वह उनके अचेतन मन में उतर आया था। उसी के प्रभाव के कारण स्वप्न में उन्होंने देखा कि उनका भी विवाह हो रहा है। बरात चल पड़ी है। वे दूलहा बन घोड़ी पर बैठे हैं। घोड़ी उछल रही है। तभी उन्हें डर लगा कि कहीं घोड़ी के उछलने से मैं नीचे न गिर पड़ूँ। स्वयं को गिरने से बचाने के लिए उन्होंने नींद में एक करवट ली और धड़ाम से पास के कुएँ में गिर पड़े।

महात्मा जी कुएँ में गिरे तो जोर से आवाज हुई। कुछ बराती जाग रहे थे। कुएँ में किसी के गिरने की आवाज सुन वे भागे आए। गाँववाले भी इकट्ठा हो गए। महात्मा जी को बाहर निकाला गया। उनके सिर में चोट लगी थी और खून बह रहा था। गाँववालों ने वैद्य को बुलवाया और उनका उपचार हुआ। कुछ देर में उन्हें होश आया। तब तक सुबह हो चुकी थी। सभी बराती तैयार होकर बैठे थे।

गाँववालों एवं बरातियों ने पूछा—"महात्मा जी! आप कौन हैं और कहाँ से आए हैं और आप कुएँ में कैसे गिरे?" महात्मा जी ने अपना परिचय दिया। महात्मा जी का परिचय सुनते ही कई लोग महात्मा जी को पहचान गए और बोले—"अरे, आप तो बहुत सिद्ध महात्मा हैं। यह तो हम लोगों का सौभाग्य है कि हमें आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" सबने महात्मा जी के चरणस्पर्श किए और उनसे कुछ उपदेश करने का आग्रह भी किया।

महात्मा जी ने लोगों को संबोधित करते हुए कहा—''देवियो एवं सज्जनो! आप सबने मुझसे पूछा है कि मैं कुएँ में कैसे गिरा? तो इस प्रश्न के उत्तर में ही आप सब के लिए उपदेश भी है। हुआ क्या? हुआ यह कि मेरे मन में विवाह देखने का कुतूहल हुआ। मैंने कभी विवाह देखा भी न था। मैं तो परमात्मा के अलावा संसार में कुछ और देख ही नहीं पाता। मैंने कुतूहलवश विवाह होते देखा, बरातियों के लिए बने तामसी, राजसी भोजन को ग्रहण किया, नाच-गाने देखे और शादी के सुख को जानने की लालसा हुई। मैं कल भगवद्भजन, ध्यान भी न कर पाया और अपने अचेतन मन में विवाह में देखे गए सारे दृश्यों को लेकर मैं सो गया और उनके फलस्वरूप मैंने एक स्वप्न देखा कि मैं भी घोड़ी पर सवार हूँ और फिर मैं कुएँ में गिर पड़ा।

अब मैं आपको यह समझाना चाहता हूँ कि जब संसार के सुखों को देखने मात्र से मैं कुएँ में गिर पड़ा तो फिर उन सुख-भोगों में दिन-रात डूबे रहने वालों की भला क्या दुर्दशा होती होगी? मैं दिन-रात भजन करता हूँ, पर मैं एक दिन भजन नहीं कर पाया और संसार को देखता रहा तो उसके फलस्वरूप मैं कुएँ में गिर पड़ा। अब आप ही समझें कि जो भगवान का कभी भजन-ध्यान ही नहीं करते—भला इस संसार में उनका क्या हाल होगा।

''भगवद्भजन के कारण ही प्रभु ने आपके माध्यम से मेरी रक्षा की है। मैं तो कुएँ से बाहर निकल आया, पर जो संसार के भोगों को ही सब कुछ समझते हैं और भगवान को कुछ भी नहीं समझते, कभी भगवद्भजन, भगवद्ध्यान नहीं करते, भला वे मोह के अंधकूप से बाहर कैसे निकल पाएँगे?''

महात्मा जी फिर बोले—''मेरा आप सब के लिए यही उपदेश है कि भगवान को कभी भूलें नहीं। संसार में रहें, पर संसार का होकर नहीं, वरन भगवान का होकर रहें। नित्य भगवद्भजन, भगवद्ध्यान करें, सात्त्विक आहार ग्रहण करें। नशे से दूर रहें तो आप संसार में रहते हुए भगवत्कृपा से संसार-सागर से पार हो सकेंगे, मोह के अंधकूप से बाहर आ सकेंगे और पल-पल आप भगवदानुभूति करते हुए जीवन में सदैव आनंदित रहेंगे। प्रभु पल-पल आपके साथ होंगे और आपकी भी रक्षा करेंगे।'' यह कहते हुए महात्मा जी अपने गंतव्य की ओर चल पड़े। ❑

युधिष्ठिर ने एक बार भीष्म पितामह से पूछा— ''पितामह! कौन-सा राष्ट्र अजेय हो सकता है?'' पितामह ने उत्तर दिया—''जिस राष्ट्र के विभिन्न वर्ग, धागों की तरह एक रस्सी में एक प्राण के समान हों, उस राष्ट्र को कोई जीत नहीं सकता; क्योंकि एकता अजेय होती है। जिस राष्ट्र के व्यापारी और कृषक पराक्रमी हों, उस राष्ट्र को कोई जीत नहीं सकता; क्योंकि लक्ष्मी का पराक्रम अजेय होता है। जिस राष्ट्र की प्रजा राष्ट्र के लिए सब कुछ देने को तैयार हो, उस राष्ट्र को कोई नहीं जीत सकता; क्योंकि बलिदान सदैव अजेय होता है। इन तीनों सूत्रों को गाँठ में बाँध लो तो तुम्हारा राष्ट्र सदैव अजेय रहेगा। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि राष्ट्रनायक अर्थात राजा श्रेष्ठ चरित्र का धनी हो, नीतिनिपुण हो, मर्यादायुक्त हो।'' ऐसा अजेय राष्ट्र ही राजा और प्रजा, दोनों के लिए सुखकारी होता है।

सर्वथा त्याज्य है मांसाहार

आहार जीवन का आधार है। हर प्राणी का अस्तित्व आहार पर निर्भर है। मानव जीवन पर भी यह तथ्य लागू होता है और आहार का निर्धारण किसी भी स्थान की देश, काल व स्थिति के आधार पर तय होता है, लेकिन इसके साथ व्यक्ति-परिवार के स्वास्थ्य से लेकर, उसकी आर्थिक स्थिति तथा इनके मानसिक एवं सामाजिक प्रभाव आदि को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

इनसान मूलत: शाकाहारी प्राणी है, उसकी आँत से लेकर दाँत व शरीर की संरचना इसी तथ्य को इंगित करते हैं। किसी भी रूप में मांसाहार इनसान का नैसर्गिक आहार नहीं ठहरता। मांसाहारी जीवों की शारीरिक संरचना, उनके प्रकृतिप्रदत्त मौलिक स्वभाव को निर्धारित करती है। जैसे उनके लंबे नाखून, नुकीले दाँत होते हैं व आँतों में विशेष प्रकार के जैव-रसायनों का स्राव होता है—जो कच्चे मांस को गलाकर पचाने में समर्थ होते हैं, जबकि इनसान में ये क्षमताएँ नहीं पाई जातीं।

समुद्री किनारों, ध्रुवीय क्षेत्रों व अन्य स्थलों में जहाँ अन्न, शाक आदि का अभाव हो तथा मछली से लेकर अन्य समुद्री जीवों की बहुलता रहती है, तो ऐसे में वहाँ की मजबूरी समझी जा सकती है कि वहाँ के लोगों को मांसाहार पर निर्भर रहना पड़ता है। उत्तरी ध्रुव में एस्किमोज अधिकांश समय बरफ के घरों में रहते हैं। वर्ष भर अधिकांश समय यहाँ चारों ओर बरफ रहती है। घास नाम मात्र की होती है और अन्न व अन्य शाकाहारी खाद्य पदार्थों का अभाव रहता है।

इसी तरह समुद्री तट पर रहने वाले मछुआरों के लिए सहज रूप से उपलब्ध आहार सागर या नदियों में पाई जाने वाली मछलियों से लेकर अन्य समुद्री जीव रहते हैं, लेकिन जहाँ अन्न, शाक व अन्य शाकाहारी फल-फूल व खाद्य पदार्थों की कोई कमी न हो, वहाँ मांसाहार का चलन समझ से परे है। अधिकांशत: वहाँ स्वाद के लिए मांस का उपयोग किया जाता है।

किसी जमाने में प्रारंभ परंपराओं व विषम परिस्थितियों के चलते जीवन-निर्वाह के लिए संभव है कि कहीं-कहीं मांसाहार को अपनाया जाता रहा हो, लेकिन बदलती अनुकूल परिस्थितियों के अनुरूप इनमें उपयुक्त सुधार करना अनिवार्य हो जाता था। अत: कहा जा सकता है कि जहाँ मजबूरी या आवश्यकता के अतिरिक्त स्वाद या अंधविश्वासमूलक परंपरा मांसाहार के निर्धारक तत्त्व बन जाते हैं, वहीं से मांसाहार से जुड़ी विकृतियाँ प्रारंभ हो जाती हैं और इन पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो जाता है।

इनसान के लिए पहले तो किसी भी रूप में मांसाहार आदर्श भोजन की श्रेणी में नहीं आता। मांस-भक्षण को शारीरिक पोषण व शक्ति का आधार मानना एक भ्रांति ही मानी जाएगी। हाथी, गैंडे से लेकर जिराफ व घोड़े जैसे विश्व के सबसे शक्तिशाली एवं स्फूर्तिवान प्राणी सब शाकाहारी ही हैं। इनसान में ही कितने शाकाहारी पहलवान हुए हैं और आज भी हैं, जो किसी भी रूप में शक्ति, स्फूर्ति व आरोग्य में मांसाहारियों से कम नहीं रहे, बल्कि उन पर भारी ही पड़ते देखे जा सकते हैं।

आजकल जिस तरह के संक्रमण पशुओं में हो रहे हैं, इनका आहार के रूप में उपयोग खतरे से खाली नहीं रह गया है। इसके साथ मांस के लिए पाले जा रहे इन जीवों में त्वरित विकास के लिए कई तरह के घातक जैव-रसायनों का उपयोग किया जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए घातक रहते हैं। मांस को पचाने में शरीर को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। कुल मिलाकर तन-मन पर मांसाहार भारी ही पड़ता है और इसके साथ इसका तामसिक प्रभाव भी होता है, अतः किसी भी रूप में मांसाहार को उत्कर्ष के अभीप्सु मनुष्य के लिए उपयुक्त आहार नहीं कहा जा सकता।

सबसे विचारणीय पक्ष है, मांसाहार से जुड़ी जीव हिंसा। किसी भी रूप में निरीह जीवों की हत्या कर अपनी स्वाद-लिप्सा की पूर्ति को उचित नहीं ठहराया जा सकता। यह सर्वथा एक पापजन्य कृत्य है, घृणित एवं त्याज्य कर्म है। कोई भी आध्यात्मिक ग्रंथ मांसाहार की इजाजत नहीं देता। महाभारत में कहा गया है कि जो व्यक्ति दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उससे नीच और निर्दयी मनुष्य दूसरा कोई नहीं।

मांस न तो घास से और न ही लकड़ी से और न ही पत्थर से पैदा होता है। मांस प्राणी की हत्या करने पर ही मिलता है। इसलिए मांस खाने में दोष है। जैसे हर व्यक्ति को अपना प्राण प्रिय होता है, वैसे ही सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्रिय होते हैं। अतः जो व्यक्ति मांस का त्याग करता है, वह सब प्राणियों में आदरणीय, जीवों का विश्वसनीय और साधुओं से सम्मानित होता है।

मांसाहार से जुड़ी जघन्यता तब और भी घनीभूत हो जाती है, जब देवी-देवताओं के नाम पर बलि देने के आधार पर मांसभक्षण का समर्थन व पोषण किया जाता है। यह किसी भी रूप में किसी सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का अंग नहीं माना जा सकता और देव संस्कृति में तो कहीं से भी इसका कोई स्थान नहीं हो सकता। यदि कहीं ऐसा किसी कारण से हो रहा है तो इसे तत्काल रूप से बंद करने की आवश्यकता है।

फिर मांसाहार से जुड़े पर्यावरणीय पक्ष भी विचारणीय हैं। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, भूमि उपयोग, जल उपयोग, जल प्रदूषण और जैव विविधता की हानि जैसे पाँच कारकों पर हुए वैज्ञानिक अनुसंधान में पाया गया कि मांस खाने वालों की तुलना में शाकाहारियों का आहार संबंधी प्रभाव केवल 30 % होता है।

एक किलो मांस को तैयार करने के लिए 5 से 20000 लीटर जल की खपत होती है; जबकि एक किलो सब्जी उत्पादन में मात्र 322 लीटर जल का उपयोग होता है। पहले ही जल संकट, पर्यावरण प्रदूषण से लेकर जैव-विविधता के संकट से जूझ रही धरती, मांसाहार की विलासिता को नहीं झेल सकती।

आश्चर्य नहीं कि आइंस्टाइन जैसे वैज्ञानिक शिरोमणि कहा करते थे कि शाकाहार का हमारी संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ता है और यदि विश्व शाकाहार को अपना ले, तो इनसान का भाग्य पलट सकता है। अपनी समय की विभूति लियोनार्डो दि विंची, तो पिंजरों से कैद पक्षियों को खरीदकर उन्हें उड़ा दिया करते थे। आज तमाम वैज्ञानिक अनुसंधान सिद्ध करते हैं कि शाकाहार सर्वोत्तम आहार है, जिससे तमाम तरह के रोगों से बचा जा सकता है।

भारत तो शाकाहार का पालना रहा है। शास्त्रों में मांसाहार को सर्वथा निंदित व त्याज्य बताया गया है। यह भी प्रयोगसिद्ध है कि मांसाहारी की तुलना में शाकाहारी अवसाद से कम ग्रसित पाए

जाते हैं। श्रीमद्‍भगवद्‍गीता के अनुसार, मांसाहार आसुरी गुण है। इसे तामसिक भोजन माना जाता है। इस तरह का भोजन व्यक्ति को आलसी, रोगी व दुःखी बनाता है।

महाभारत में कहा गया है कि कोई व्यक्ति यदि सौ अश्वमेध यज्ञ करता है और दूसरा व्यक्ति जीवनपर्यंत मांस को हाथ भी नहीं लगाता तो दोनों में शाकाहारी को अधिक पुण्य मिलेगा। इस तरह शाकाहार हर रूप में वरेण्य है।

यदि मांसाहार किसी रूप में हमारी जीवन शैली का हिस्सा रहा हो, तो उसे समय रहते त्यागने में भलाई है, समझदारी है। शाकाहार एक स्वस्थ, नीरोग, सुखी एवं हर दृष्टि से समुन्नत जीवन का आधार है। इसे स्वयं अपनाएँ व परिवार तथा समाज में इसके प्रचलन को प्रोत्साहित करें। इसी में देव संस्कृति की सच्ची सेवा व प्रसार का भाव भी अंतर्निहित है। ❑

आदि शंकराचार्य वाराणसी में निवास कर रहे थे। एक दिन वे अपने शिष्यों के साथ गंगादर्शन को निकले थे कि मार्ग में एक चांडाल चार कुत्तों को साथ लेकर आ गया। शिष्यों के अथक प्रयास के बाद भी जब वह मार्ग से नहीं हटा तो शंकराचार्य क्रोध में बोले—"दूर हट!"

उनके ऐसा कहने पर वह चांडाल शंकराचार्य से बोला— "महाराज! मैंने सुना था कि आप वेदांत के मर्मज्ञ विद्वान हैं। वेदांत की मान्यता है कि समस्त जीवों में उसी एक परब्रह्म की चेतना विद्यमान है। फिर किस कारण विशेष से आप मुझमें एवं अन्य प्राणियों में भेद का भाव रखते हैं? जब परमात्मा समस्त प्राणियों में एवं संपूर्ण जगत् में समान रूप से विद्यमान है, तब आपके अंदर यह मिथ्या धारणा कैसे आ गई कि आप और मुझमें कोई भेद है?"

चांडाल के वचन सुनकर शंकराचार्य का मन क्षुब्ध हो उठा, उन्हें अनुभव हुआ कि वह सत्य कह रहा था। उन्होंने सोचा कि प्राणिमात्र में तो प्रभु ही हैं, फिर भेदभाव कैसा। इस विचार के साथ उनके मुँह से निकला—

स द्विजोस्तु भवतु श्वयचो वा, वन्दनीय इति मे दृढ़ निष्ठा।

अर्थात अब मेरी दृढ़ धारणा है कि संपूर्ण विश्व एक ही ब्रह्म से व्याप्त है, वह चाहे द्विज हो या न हो, मेरे लिए वंदनीय है।

संत एकनाथ की भगवद्दृष्टि

भगवद्अनुभूति पा लेने पर साधक में द्वैत की भावना नहीं रह जाती। वह सदा अद्वैत की भावना से ओत-प्रोत रहता है। उसकी दृष्टि में मैं-तू या मेरा-तेरा भी नहीं रहता। अद्वैत अथवा एकत्व की दृष्टि से देखने से साधक की, भक्त की दृष्टि में भगवान ही भर जाते हैं। ध्यान में, मन में, अंतर्जगत् में और सृष्टि के कण-कण में उसे भगवान ही भगवान नजर आते हैं। अपनी निश्छल, अटल व निष्कामभक्ति से भगवत्प्राप्ति करने वाले संत एकनाथ की दृष्टि भी सृष्टि के कण-कण में भगवान को देखती थी; क्योंकि उनकी दृष्टि में सदैव भगवान ही भरे हुए होते थे।

इसलिए गृहस्थाश्रम में रहते हुए, संसार में रहते हुए वे तदनुरूप ही लोक-व्यवहार किया करते थे। उनके द्वारा पितरों के लिए तैयार किया गया भोजन-प्रसाद करुणावश दूसरों को परोस देना, अपने घर में आए हुए चोरों को भोजन कराना, महार के बच्चे को गोद में उठा लेना और उसे उसकी माता के पास पहुँचा देना, तीर्थोदक गधे को पिलाकर उसकी प्यास बुझाना, अपने घर में आए हुए अतिथियों का भगवद्भाव से आदर-सत्कार करना आदि लोक-व्यवहार में उनकी भगवद्दृष्टि ही परिलक्षित होती है। दूसरी ओर अपनी स्त्री की पीठ पर उछलकर बैठ जाने वाले व्यक्ति को पुत्रवत् मानना और अपने बदन पर थूकने वाले यवन को माफ करना आदि बातें उनकी भगवद्दृष्टि और परम शांति का ही परिचय देती हैं।

साधक जब अद्वैतभाव से, ब्रह्मभाव से भरा हुआ होता है तो उसके चिंतन, चरित्र और व्यवहार से वे दिव्य भाव निश्चित ही परिलक्षित होने लगते हैं। संत एकनाथ भी एक ऐसे ही उच्चकोटि के संत थे, साधक थे, जिनकी दृष्टि हमेशा भगवान के दिव्य भाव से भरी होती थी। उनसे जुड़ी ऐसी कई कथाएँ हैं, जिनसे उनकी भगवद्दृष्टि दृष्टिगोचर होती है और साधकों को आह्लादित भी करती है।

एक ऐसी ही कथा उनसे जुड़ी हुई है। कथा के अनुसार पैठण में एक बड़ी चतुर, सुंदर और नृत्य-गायन में निपुण वेश्या रहती थी। संत एकनाथ के यहाँ भगवद्भजन, कीर्तन आदि अक्सर हुआ करते थे, जिसमें कोई भी भाग ले सकता था। उसमें आने से किसी को भी रोका-टोका नहीं जाता था।

अपने घर में पधारे लोगों को हरिकीर्तन करते हुए देखकर, सुनकर संत एकनाथ के आनंद की कोई सीमा न होती थी। स्वयं हरिकीर्तन करते हुए और दूसरों को हरिकीर्तन करते हुए देखकर वे आह्लादित हो उठते थे। संयोगवश पैठण में रहने वाली वह वेश्या भी उनके संकीर्तन में आने लगी। वह उनके सत्संग में आकर उनके उपदेश श्रवण करने लगी। उसे सत्संग में बैठे देखकर कई लोग नाक-मुँह अवश्य सिकोड़ते थे, पर संत एकनाथ की भगवद्दृष्टि तो सबमें भगवान को ही देखा करती थी।

संत एकनाथ के सत्संग ने धीरे-धीरे उस वेश्या पर अपना असर दिखाना प्रारंभ कर दिया। एक दिन संत एकनाथ ने पिंगला की कथा सुनाई। कथा का उस वेश्या पर बहुत अधिक असर हुआ और उसे ऐसा लगा मानो उसके चित्त में कोई बड़ी घटना घट गई हो। पिंगला के समान उसके मन में

भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसे अपने पेशे से घृणा हो गई।

वह सोचने लगी कि रक्त, मांस से बना मनुष्य का यह शरीर मल-मूत्र से भरा है। मैंने अब तक ऐसे कितने शरीरों का आलिंगन किया, पर फिर भी कभी जी नहीं भरा। कितनी अभागिन हूँ मैं, जो वासना में अंधी होकर प्रेमरस, आनंदस्वरूप भगवान के बजाय काम-वासना में सुख ढूँढ़ती रही और अपने हृदयस्थ आत्मस्वरूप, आनंदस्वरूप, प्रेमस्वरूप भगवान को भूल गई। मैं प्रेम और आनंद वहाँ ढूँढ़ती रही, जहाँ वह है ही नहीं और न हो सकता है। ऐसे-ऐसे भाव उसके हृदय में उठने लगे। उसके हृदय में एक हलचल-सी होने लगी। एकनाथ जैसे संत की अमृतवाणी और भगवान के दिव्य भाव से भरी हुई उनकी दृष्टि ने उस वेश्या के चित्त में हलचल-सी मचा दी।

वह सत्संग से लौटकर घर गई और आठ दिनों तक अपने घर का द्वार बंद करके अकेली ही बैठी रही। यह वही घर था, जहाँ दिन-रात ग्राहकों के आने-जाने की आहट सुनाई देती थी, पर आठ दिनों से उस आहट से दूर वह अकेली ही अपने घर में बैठी रही। उसे बार-बार संत एकनाथ की प्रेमदृष्टि व उनके उपदेश का स्मरण होता रहा। वह सोचती रही कि क्या संत एकनाथ के परम पावन चरण मेरे पापसदन में आ सकते हैं, जिससे मेरा पापसदन, पापों से भरा मेरा घर उनके पावन चरणों के स्पर्श से पावन हो सके।

वह ऐसा सोच ही रही थी कि तभी गंगास्नान करके उसी रास्ते से लौट रहे संत एकनाथ को उसने अपनी छत से देखा। वह तुरंत छत से नीचे घर के दरवाजे पर आकर बड़े विनम्र भाव से बोली—''महाराज! क्या आप मुझ अभागिन के घर में अपने पावन चरण रखकर मुझे पवित्र करने की कृपा कर सकेंगे?''

संत एकनाथ बोले—''हाँ! क्यों नहीं!'' और ऐसा कहकर अपने एक शिष्य के साथ वे उसके घर में प्रवेश कर गए। उसने महाराज को एक चौकी पर बैठाया और स्वयं दरवाजे पर रोमांचित होकर खड़ी रही। वह निःशब्द थी और संत एकनाथ भी मौन रहे। कहाँ संत एकनाथ जैसे भगवत्प्राप्त संत और कहाँ मैं पापिन; फिर भी विनती करते ही यह हमारे घर पधारे—यह सोचकर उसका कंठ रुँध गया।

जैसे सूर्य के समक्ष अंधकार नहीं टिकता, वैसे ही संत एकनाथ जैसे भगवत्कोटि संत के दर्शन से मानो उसकी हृदयगत सारी पाप-वासनाएँ मिट गईं। उसके हृदय में सच्चा भगवत्प्रेम जाग उठा। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। यह देखकर संत एकनाथ के हृदय में उसके प्रति करुणा भर आई और उन्होंने उसे धैर्य दिलाया।

भूतं भव्यं भविष्यच्च वेत्ति सर्वं सकारणम्।
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद् ध्रुवम्॥

—शिव संहिता 5/88

अर्थात आत्मसाधना से भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सब वस्तुओं के कारण का ज्ञान होता है। जो शास्त्र सुने नहीं गए हैं, उनके भी रहस्य जानने तथा व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त होती है।

संत एकनाथ महाराज ने 'राम कृष्ण हरि' मंत्र की दीक्षा देकर उसे सत्कर्म का क्रम बताया। वह तदनुरूप जीवन जीने लगी। नित्य भगवन्नाम जप, ध्यान करने लगी और दस वर्ष में ही इतनी विमल हो गई कि मृत्यु के समय भगवद्ध्यान और नामस्मरण करते हुए ही बड़ी शांति से उसने देह-त्याग किया। ऐसे थे संत एकनाथ। ऐसी थी उनकी भगवद्दृष्टि, ऐसी थी उनकी अमृतवाणी। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-19

तीन दिव्य उपास्य और उनके तीन महान वरदान

माता-पिता और गुरु को तीन देवताओं की संज्ञा दी गई है। माता को ब्रह्मा, पिता को विष्णु और गुरु को शिव कहते हैं। इन तीनों का लाभ जिसे मिल गया समझना चाहिए, उसने तीनों लोकों की संपदा प्राप्त कर ली। भौतिक देहधारी प्रतीक-प्रतिमा वाले माता-पिता और गुरु का भी महत्त्व है फिर दिव्य सत्तासंपन्न इन त्रिदेवों का तो कहना ही क्या?

गुरुदेव के शरीरधारी पिता उनको बारह वर्ष का छोड़कर स्वर्ग सिधार गए थे। माताजी गत वर्ष तक जीवित रहीं। सांसारिक गुरु—उनके महामना मालवीय जी थे। यज्ञोपवीत और गायत्री मंत्र इन्हीं ने दिया था। यों उनके शरीर पर ये तीनों ही यथासंभव अनुग्रह बनाए रहे, स्नेह देते रहे, पर जिनका अहर्निश अजस्र अनुदान, निरंतर मिलता रहा, वे तीनों दिव्य सत्तासंपन्न ही थे।

इसे एक स्पृहणीय सौभाग्य ही कहना चाहिए, जो यह जीवन को धन्य बनाने वाली उन्हें उपलब्धियाँ मिल सकीं अन्यथा आमतौर से आम लोग वासना, तृष्णा और अहंता की त्रिविध आग में जलते-झुलसते, नारकीय यातना-यंत्रणा सहते रहते हैं। इस सुरदुर्लभ मानव जीवन को यों ही निरर्थक गँवा देते हैं।

गुरुदेव के माता-पिता ने स्वयंभू मनु और शतरूपा रानी की तरह तप-साधना की थी, ब्राह्मणोचित जीवन जिया था और भगवान से एक ही प्रार्थना की थी—वे एक ऐसा पौधा लगाना चाहते हैं, जो अपनी छाया और सुषमा से इस विश्व-उपवन की शोभा बढ़ाने में समर्थ हो सके। अपने लोभ-मोह के लिए नहीं, उन्हें विश्वमानव के चरणों में एक श्रद्धांजलि के रूप में किसी प्रतीक की कामना थी। सो भगवान ने पूरी कर दी।

एक संस्कारवान आत्मा जो जन्म-जन्मांतरों से अपने कषाय-कल्मषों को धोने में संलग्न थी, लाकर उनकी गोद में रख दी। आत्मा जन्मी, कुलीन ब्राह्मण परिवार की उच्च्च परंपराओं में लालन-पालन हुआ। खेल-कूद के दिन ही चल रहे थे कि एक दिन अनायास ही घर से निकल पड़े, भारी ढूँढ़-खोज हुई।

गाँव से 5-6 मील दूर स्टेशन पर पकड़े गए। पूछा गया तो इतना ही कहा—हमारा घर तो हिमालय है, वहीं जाना है, यहाँ रहकर क्या करेंगे। आठ वर्ष के बालक के मुँह से निकली हुई यह बात उन दिनों महत्त्वहीन समझी गई थी। उसे धमकाया भी गया था। तब किसी को पता न था कि यह कोई हिमालय का बिछड़ा प्राणी है, जो वहीं जाने की लौ लगाए हुए है और वहीं जाकर रहेगा।

तीन देवता, तीन संरक्षक उन पर छाया करने लगे और सहायता देने लगे। माता के रूप में उन्हें गायत्री माता का, कामधेनु का पयपान करते रहने का अवसर मिला, पिता के रूप में हिमालय, गुरु के रूप में एक ऐसे सिद्धपुरुष जिन्हें वे अतिमानव, देव सत्त्व और ब्रह्म-प्रतीक मानते हैं। शब्दों में वे उन्हें 'मार्गदर्शक' कहते हैं, कभी मौज में आते हैं तो 'मास्टर' भी।

यही हैं उनके तीन सहायक, संरक्षक, प्रेरक, अभिभावक। उन्हें वे अमृत, पारस और कल्पवृक्ष भी कहते हैं। गायत्री मंत्र अमृत है, जिसे पाकर उनकी सत्ता अजर-अमर और देवतुल्य हो गई। हिमालय का पारस स्पर्श करके वे उतने ही ऊँचे उठ सके। हिमाच्छादित धवल शीतलता से भरा-पूरा उनका व्यक्तित्व जिसने भी छुआ—अपनी जलन को शांति में परिणत करता चला गया।

कल्पवृक्ष हैं उनके मार्गदर्शक जिन्होंने अपनी शताब्दियों की साधना शक्ति का उपयोग करने की पूरी छूट दी हुई है। उस कल्पवृक्ष की छाया में बैठ सकने के कारण ही वे ऐसा और इतना अद्भुत कुछ प्राप्त करते हैं, जिसे देख, सुनकर अवाक् रह जाना पड़ता है।

मोटेतौर से जो व्यक्तित्व और कृतित्व गुरुदेव का दिखता है, वह उनका अपना नहीं है। वस्तुत: उपरोक्त तीन दिव्य सत्ताएँ इस कलेवर में आकर मिलती हैं और वह स्थल तीर्थराज जैसा पवित्र बन जाता है।

इस जन्म में यह सौभाग्य-सूर्योदय उस घड़ी हुआ, जब वे पंद्रह वर्ष पूरे करके सोलहवें वर्ष में पदार्पण कर रहे थे। अपने उपासनागृह में एक दिव्य प्रकाश उन्होंने प्रकाशवान देखा, जो बाहर से घनीभूत होता हुआ उनके शरीर, मन और अंत:करण में समा गया। उसे आत्मबोध, अंत:स्फुरणा, दिव्य अनुग्रह, गुरुदर्शन, आंतरिक या जो कुछ भी समझा जाए, प्राप्त हुआ। यह प्रकाश ही उनका मार्गदर्शक है।

भौतिक रूप से वह चिनगारी उस प्रदेश से संबंधित है, जिसे गुरुदेव 'चेतना का ध्रुव प्रदेश' या हिमालय का हृदय कहते हैं। यह स्थूल भी है, सूक्ष्म भी। इस प्रकाश का स्थूल प्रतीक एक ऐसे सिद्धपुरुष का शरीर है, जो चिरकाल से नग्न, मौन, एकाकी, निराहार रहकर अपने अग्नि अस्तित्व को अधिकाधिक प्रखर, प्रचंड बनाते चले जा रहे हैं।

उस महान मार्गदर्शक का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ अनुग्रह पहले ही दिन जो मिला, वह एक आदेश के रूप में था, जिसके अनुसार उन्हें गायत्री मंत्र के माध्यम से चौबीस वर्ष तक तपश्चर्या करने को कहा गया था।

भौतिक दृष्टि से इसे हानि माना जाना चाहिए; क्योंकि उसमें प्राय: सभी सुविधाओं और हँसी-खुशी की परिस्थितियों का अपहरण कर लिया गया था। सांसारिक दृष्टि से गुरुकृपा, देवकृपा वह है जिससे धन, पद, वैभव, यश, स्वास्थ्य, परिवार आदि की वृद्धि हो। आमतौर से वरदान, आशीर्वाद यही मागे भी जाते हैं। बड़प्पन ही लक्ष्य होता है, महानता की बात सोचता कौन है ? पर जिन्हें बारीकी से सोचना आता है वे जीवन का लक्ष्य, स्वरूप, महत्त्व और उपयोग समझते हैं।

इस सार्थकता के लिए जिस साधन की आवश्यकता पड़ती है वह है—'आत्मबल'। इसी के साथ गुण, कर्म, स्वभाव की अनेक उत्कृष्टताएँ जुड़ी रहती हैं और जब यह तत्त्व विकसित होता है तो अनायास ही ऐसी अलौकिकताएँ फूट पड़ती हैं, जिन्हें ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से पहचाना जाता है।

मार्गदर्शक ने यही उचित समझा। जीव का कल्याण और विश्वहित इसी में देखा। वे तप-साधना का आदर्श ही नहीं, अटूट विश्वास और प्रचंड साहस भी देकर चले गए। परिवार, संबंधी, शुभचिंतक सभी ने उस नई प्रक्रिया को अभिशाप समझा, कोसा भी और रोका भी, जिसने सुना सनक, मूर्खता, बरबादी आदि न जाने क्या-क्या कहा।

ऐसा एक भी स्वजन, संबंधी नहीं निकला जो उस आरंभिक कष्ट को सहन कर किसान के कृषिकार्य और विद्यार्थी के पठन-श्रम से तुलना करता और भावी परिणामों को सोचता। लोगों की दृष्टि बड़ी सीमित होती है वे सिर्फ आज की

समझ, सोच देख सकते हैं। उनमें इतनी समझ कहाँ, जो कल की, पीछे की संभावना का आभास प्राप्त कर सकें।

नारद जी ने ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि को, पार्वती, सावित्री और सुकन्या को ऐसा ही उपदेश दिया था, जो तत्काल उनके परिवार को, शुभचिंतकों को बहुत बुरा लगा था। विश्वामित्र ने हरिश्चंद्र को भी ऐसी ही विचित्र परिस्थितियों में धकेल दिया था। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को जिस राह पर चलाया था, वह उनके घरवालों को तनिक पसंद नहीं था। रामकृष्ण परमहंस द्वारा विवेकानंद को जो सलाह दी गई, सो उनके घरवालों को बुरी लगी।

गुरु गोविंद सिंह ने अपने शिष्यों को कौन-सी जागीरें दी थीं, उन्हें लड़ने-मरने के त्रास ही दिए थे। भर्तृहरि ने अपने भानजे गोपीचंद को वैरागी बना दिया और मदालसा ने अपने पुत्रों को तत्त्वज्ञानी बनने की शिक्षा दी। बुद्ध का अनुग्रह आम्रपाली पर, अशोक पर, राहुल पर, आनंद पर बरसा तो वे ऐश्वर्य की ओर अभिवृद्धि तो दूर उलटे भिक्षुक ही बन गए। गांधी ने नेहरू, पटेल, राजेंद्र बाबू आदि को बंदीगृह में डलवा दिया। दिव्यसत्ताओं का प्यार, अनुदान भी विचित्र होता है। साधारण लोग उसे लेने का साहस तब करें, जब उसका मूल्य-महत्त्व समझने में समर्थ हों।

बड़प्पन और महानता एकदूसरे से लगभग सर्वथा प्रतिकूल हैं। एक को खोकर ही दूसरे को पाया जा सकता है। सो सद्गुरु के मार्गदर्शन ने उन्हें विवेक दिया, विश्वास दिया और साहस दिया। इन तीन अवलंबनों को पाकर वे अपनी राह पर चल पड़े। कौन क्या कहता है? यह उन्होंने सुना ही नहीं। महानता की राह पर पैंतालीस वर्ष तक उँगली पकड़कर छोटे बच्चे को चलाते आ रहे उनके मार्गदर्शक की कृपा को सराहा जाए या शिष्य की समर्पण भरी निष्ठा को।

गुरुदेव ने अपना तप, आत्मबल, शिष्य पर उँड़ेल दिया और शिष्य ने अपना आपा, अस्तित्व ही उन्हें समर्पित कर दिया। तन तो तुच्छ है। अपनी कोई इच्छा तक शेष नहीं रहने दी। जो मार्गदर्शक की इच्छा, वही अपनी। तर्क-वितर्क की कोई गुंजायश ही नहीं। कप्तान का अनुशासन मानने एवं बनाने में सैनिक हिचक सकता है, पर वे तो कठपुतली मात्र रह गए, इशारे पर नाचे। पोली वंशी वही अलापती, जो बजाने वाला तान-स्वर छोड़ता है। इस समर्पण ने उन्हें अपने मास्टर का सब कुछ प्राप्त कर सकने का अधिकार दे दिया।

इसे आध्यात्मिक विवाह कह सकते हैं। सुना है जल में कृष्ण ने स्नान करती हुई गोपियों के चीरहरण किए। गुरुदेव के साथ भी यही बीती है। उनके 'मास्टर' ने उन्हें सच्चे अर्थों में नग्न, निर्वस्त्र कर दिया। अपना कहलाने जैसा उनके पास कोई पदार्थ तो क्या शरीर भी नहीं, मन भी नहीं, भावना भी नहीं, कामना भी नहीं। कुछ भी नहीं। इस अवधूत स्थिति में उन्हें वह मिला है, जिसे अहंता से सँजोए रहने वाला हजार जन्म में भी प्राप्त न कर सकेगा। (क्रमशः)

जो काम मेरा था, सो मैंने कर रखा है। इस युग को बदलने के संबंध में जो महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं, उनके संबंध में आपको तो श्रेय भर लेना है। जीतना किससे है और हारना किससे है? न किसी से हारना है, न किसी से जीतना है? आपको तो जो विजयी होने का श्रेय मिलना चाहिए और वही श्रेय आपको प्राप्त करना है। ***—परमपूज्य गुरुदेव (अमृतवाणी)***

श्रम, सेवा और त्याग

मंगल जंगल से लकड़ियाँ काटकर अपना जीवन निर्वाह करता था। एक दिन वह शहर की ओर जा रहा था। उसे एक ऐसा आदमी मिला, जो पैदल चलते-चलते थक गया था। उसका नाम सूरज था। उसने मंगल से कहा—"भाई ! मैं बहुत थक गया हूँ। कृपा करके मुझे अपनी बैलगाड़ी में बिठाकर शहर छोड़ दो।" मंगल ने उसे अपनी बैलगाड़ी में बैठा लिया। दोनों में अच्छी दोस्ती हो गई। रात होने के कारण सूरज ने मंगल को अपने घर में रोक लिया। दूसरे दिन पूर्णिमा थी।

सूरज ने मंगल से कहा—"मंगल! आज मैं तुम्हें एक ऐसा दृश्य दिखाऊँगा, जिसकी तुमने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। उसे देखकर आश्चर्य में डूब जाओगे। मेरे नगर के राजा का एक प्रधान खजानची है। उसका सिद्धांत है, खाना-पीना और आनंद से रहना। वह कहता है, एक-न-एक दिन मनुष्य को सब कुछ छोड़कर जाना पड़ता है। अतः संग्रह से कोई लाभ नहीं है। मनुष्य को अपने जीवन में ही अपनी उपार्जित वस्तुओं का उपभोग कर लेना चाहिए।

"यों तो खजानची प्रतिदिन बड़े ठाठ-बाट से भोजन करता है, पर पूर्णिमा की रात वह जिस ढंग से भोजन करता है, वह देखने योग्य होता है। उसका भोजन सोने के बरतनों में तैयार किया जाता है और वह जिन बरतनों में भोजन करता है, वह भी सोने के ही होते हैं। वह जिस पाटे पर बैठकर भोजन करता है, वह भी सोने का ही होता है।

"खजानची नीचे से लेकर ऊपर तक पीले परिधानों से सुशोभित रहता है। उसके शरीर पर भी सोने के अमूल्य आभूषण रहते हैं। उसके नौकर और उसका रसोइया भी पीले वस्त्र तथा स्वर्ण आभूषण धारण किए रहते हैं। चाँदनी रात में खजानची के घर ऐसी स्वर्ण आभा बिखरी रहती है कि मनुष्य का मन ही नहीं, देवताओं का मन भी ललक उठता होगा। नगर के रईस भी उस अनुपम दृश्य को देखने के लिए वहाँ इकट्ठे होते हैं।"

सूरज की बातें सुनकर मंगल के मन में भी उस खजानची के भोजन के दृश्य को देखने की ललक हुई। खजानची तरह-तरह के सोने के आभूषणों और पीले परिधानों से सज्जित होकर भोजन के लिए सोने के पाटे पर बैठा। उसके सामने जब सोने के पात्रों में तरह-तरह के व्यंजन परोसे गए, तो उस दृश्य एवं उन व्यंजनों को देखकर मंगल अपने मन को वश में नहीं रख सका।

वह धीरे से सूरज से बोला—"भाई सूरज! सचमुच यह तो बड़ा अपूर्व दृश्य है। काश! मैं भी एक दिन ऐसे ढंग से इसी तरह का भोजन करता, पर क्या ऐसा कभी संभव हो सकता है ? नहीं, इस गरीब के जीवन में यह कभी नहीं हो सकेगा।" हालाँकि मंगल ने बहुत ही धीरे स्वर में अपनी बात सूरज से की थी, पर खजानची के कानों में पड़ गई।

खजानची ने दृष्टि उठाकर मंगल की ओर देखा। उसे मंगल के मुखमंडल पर कुछ अनूठापन-सा दिखाई पड़ा, उसे लगा कि इस मनुष्य के शरीर के भीतर कोई चमत्कार है। खजानची जब भोजन

कर चुका, तो उसने मंगल को अपने पास बुलाया। उसने उसकी ओर देखते हुए कहा—"मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। तुम पूर्णिमा की रात मेरे ही समान भोजन करना चाहते हो न! इसके लिए तुम्हें कठोर तप करना पड़ेगा। क्या तुम इसके लिए तैयार हो?"

मंगल बोला—"श्रीमान्! यदि एक दिन मुझे आपके समान भोजन करने का अवसर प्राप्त हो, तो मैं तप क्या, पहाड़ भी उठाने के लिए तैयार हूँ।" खजानची सोचता हुआ बोला—"नहीं! तुम्हें पर्वत नहीं उठाना पड़ेगा। तुम्हें तीन वर्षों तक खेतों में काम करना होगा।"

मंगल बोल उठा—"श्रीमान्! मैं अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए आपके खेतों में काम करने के लिए तैयार हूँ, पर तीन वर्षों के बाद मुझे आपके समान भोजन करने का अवसर प्राप्त होगा न।" खजानची ने दृढ़तापूर्वक कहा—"अवश्य प्राप्त होगा।" मंगल लकड़ियाँ काटना छोड़कर खजानची के खेतों में काम करने लगा। वह दिन भर खेतों में पसीना बहाता और रात में मजदूरों के साथ खा-पीकर सो जाया करता था।

मजदूर उसके मधुर, मृदु व्यवहार पर मुग्ध थे। वे उसे अपना मसीहा मानते थे। धीरे-धीरे तीन वर्ष बीत गए। मंगल की लगन, मेहनत और उसके प्रेम से तीन वर्षों में खजानची के खेतों में इतना अनाज पैदा हुआ कि उसके लिए रखना भी कठिन हो गया। खजानची मंगल के श्रम पर मुग्ध हो गया। साथ ही उसके मन में विचार पैदा हुआ, यह मनुष्य साधारण नहीं है।

तीन वर्ष के बाद मंगल पुनः खजानची के सामने उपस्थित हुआ। खजानची ने प्रेमभरे स्वर में कहा—"मंगल मैं तुम्हारे परिश्रम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं चौबीस घंटे के लिए तुम्हें अपने भवन का मालिक बना रहा हूँ। तुम्हें अधिकार होगा, तुम चाहे जो करो, चाहे जैसा भोजन करो।" मंगल ने निवेदन किया—"श्रीमान्! मैं आपके भवन का मालिक बनकर क्या करूँगा? मैं तो केवल एक दिन आपके समान भोजन करना चाहता हूँ।"

खजानची बोला—"पर तुमने जिस लगन और मेहनत से काम किया है, उसे देखते हुए तुम्हारी यह मजदूरी भी बहुत कम है। तुम चौबीस घंटे के लिए मेरे भवन के मालिक हो।" खजानची ने अपने सभी नौकरों को बुलाकर आदेश दिया—"मंगल चौबीस घंटे के लिए मेरे भवन का मालिक है। उसकी आज्ञाओं का पालन तुम लोगों को उसी तरह करना होगा, जिस तरह मेरी आज्ञाओं का पालन करते हो।"

भवन का मालिक बनने पर मंगल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। बस, उसे एक ही बात याद थी—"कल पूर्णिमा की रात है। मैं खजानची के समान ही भोजन करूँगा। मेरी इच्छा पूरी होगी, मेरा जीवन धन्य बनेगा।"

दूसरे दिन पूर्णिमा की रात थी। चाँदनी खिली हुई थी। मंगल खजानची के समान ही सज-धजकर सोने के पाटे पर भोजन करने के लिए बैठा। उसके सामने सोने के पात्रों में तरह-तरह के व्यंजन रखे गए। वह खाने ही जा रहा था कि उसे एक भिक्षु दिखाई पड़ा। भिक्षु ने मंगल की ओर देखते हुए प्रणाम किया।

मंगल के हृदय के भीतर दिव्य प्रकाश पैदा हुआ। उस प्रकाश से अपने आप को उसने देखा कि सारा विश्व उसके भीतर है, सारा ब्रह्मांड उसके भीतर है और सारे प्राणी उसके भीतर हैं। मंगल ने बिना किसी मोह के अपना भोजन भिक्षु को दान कर दिया। खजानची आश्चर्यचकित हो उठा। उसने आश्चर्य भरे स्वर में कहा—"मंगल! तुमने यह

क्या किया। जिस भोजन के लिए तुमने तीन वर्षों तक श्रम किया, उसे तुमने भिक्षु को दे दिया?"

मंगल बोला—"मैंने ठीक ही किया है श्रीमान्! जो मैं हूँ, वह भिक्षु भी है। मैंने भोजन किया या भिक्षु ने किया, एक ही बात है।" खजानची मंगल के कथन पर मुग्ध हो उठा। वह बोला—"मंगल! मैं सदा-सदा के लिए तुम्हें अपने घर का मालिक बना रहा हूँ।" मंगल ने मालिकाना हक भी उस भिक्षु को दान में दे दिया।

मंगल के इस भोजन-दान की बात राजा के कानों में पड़ी। मंगल के त्याग पर प्रसन्न होकर उसने अपना पूरा राज्य मंगल को दे दिया, पर मंगल ने राजा के राज्य को भी भिक्षु को दान में दे दिया।

भिक्षु मुस्कराता हुआ बोला—"इस मनुष्य की मेहनत और लगन पर प्रसन्न होकर भगवान ने इसे अपनी शरण में ले लिया है। जो प्राणी भगवान की शरण में जाता है, उसे ब्रह्मांड का राज्य भी तुच्छ लगने लगता है।" मंगल के त्याग का प्रभाव खजानची और राजा के मन पर भी पड़ा। वे दोनों भी अपना सब कुछ छोड़कर भिक्षु बन गए। एक मनुष्य को दूसरे की सहायता करनी ही चाहिए। श्रम और लगन की दृढ़ता से मनुष्य अपनी मंजिल पर पहुँचता है।

श्रम, सेवा और त्याग ही मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। परिश्रमी और प्रेमनिष्ठ मनुष्य को ईश्वर की कृपा अवश्य मिलती है। ❑

स्वामी रामतीर्थ को संन्यास लेने के उपरांत भगवत्प्रेरणा प्राप्त हुई कि उन्हें भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने अमेरिका जाना चाहिए। उन्होंने समुद्री जहाज से अमेरिका जाने की व्यवस्था बनाई। यात्रा की व्यवस्था बनाने हेतु शुल्क किसी अनजान व्यक्ति ने यों ही दे डाला, परंतु अमेरिका में प्रवास हेतु कोई साधन उनके पास न था। प्रभु की प्रेरणा से वे जहाज पर सवार तो हो गए तथापि उनके मन में पूरी निर्श्चिंतता थी कि आगे की सारी व्यवस्था भगवान बनवा ही देंगे। अमेरिकी बंदरगाह नजदीक आने लगा तो हर कोई अपना सामान इकट्ठा करने लगा, किंतु स्वामी रामतीर्थ निस्पृह भाव से एक कोने में बैठे रहे।

तभी एक अमेरिकी युवती वहाँ आई। इतने सारे कोलाहल में भी स्वामी जी को अचल बैठे देखकर उसके मन में जिज्ञासा उठी कि आखिर यह व्यक्ति कौन है, जिसे सारे संसार की जैसे कोई परवाह ही नहीं। उसने स्वामी जी से जाकर पूछा—"आप कौन हैं?" स्वामी जी बोले—"मैं अलमस्त फकीर हूँ।" उस युवती ने फिर प्रश्न किया—"आपके पास कुछ सामान दिखाई नहीं पड़ता, आप अमेरिका में कहाँ ठहरेंगे, क्या आपका यहाँ किसी से परिचय है?"

स्वामी जी उसी निरासक्त भाव से बोले—"फकीर को संपत्ति की क्या आवश्यकता? सारा संसार ही प्रभु का घर है। अब तो उन्होंने परिचय भी बना दिया।" युवती आश्चर्य से बोली—"किससे?" स्वामी जी बोले—"आपसे।" उनकी इस अलमस्तता से प्रभावित होकर वह युवती स्वामी रामतीर्थ को अपने घर ले गई और उसी ने उनके अमेरिका प्रवास की सारी व्यवस्था बना डाली। भगवान पर भरोसा हो तो रेगिस्तान में भी झरना फूट पड़ सकता है।

तन और मन की गति

शरीर को निरंतर चलाने के लिए मन का ठहराव जरूरी है। शरीर कभी नहीं ठहरता। यह सोते-जागते और आराम की अवस्था में भी गतिशील रहता है। अत: ठहराव शरीर का नहीं, मन का होता है। जब मन तेज या गलत दिशा में भागता है, तब ठहराव की जरूरत होती है। कहा जाता है कि जीवन चलने का नाम है, अत: चलते रहो।

निरंतर आगे बढ़ना ही जीवन है, रुकना मृत्यु, लेकिन निरंतर चलते रहने के लिए रुकना भी अनिवार्य है। कहा गया है कि रुकना मृत्यु है तथा बाद में कहा गया है कि आगे बढ़ने के लिए रुकना जरूरी है। थोड़ा विरोधाभास दिखलाई पड़ता है, पर है नहीं। चलना वस्तुत: दो प्रकार का होता है। एक शरीर का चलना और दूसरा मन का। मन शरीर को चलाता है, उसे नियंत्रित करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी गति को नियंत्रित करना भी अनिवार्य है।

चलना जीवन है, तो रुकना पुनर्जन्म। जब मन रुक जाता है, तो वह पुनर्निर्माण में सहायक होता है तथा उपयोगी सृजन का कारण बनता है। भौतिक शरीर अथवा स्थूल शरीर को निरंतर चलाने के लिए सूक्ष्म शरीर अर्थात मन का ठहराव जरूरी है। भौतिक शरीर कभी नहीं ठहरता। सोते-जागते अथवा आराम की अवस्था में भी गतिशील रहता है। अत: ठहराव शरीर का नहीं, मन का होता है।

जब मन तेज भागता है या गलत दिशा में दौड़ता है, तो ठहराव की जरूरत होती है। नकारात्मक मन शरीर की गति को बाधित करता है और उसे अनेक रोगों से भर देता है तो वहीं सकारात्मक मन शरीर का पोषण करता है व उसकी रोगों से रक्षा कर आरोग्य प्रदान करता है। सकारात्मक मन को नहीं, बल्कि नकारात्मक मन को ठहराना है। कीचड़युक्त पानी जब स्थिर हो जाता है तो उसमें घुली मिट्टी नीचे बैठ जाती है और स्वच्छ पानी ऊपर तैरने लगता है।

मन को रोकने पर भी यही होता है। सकारात्मक उपयोगी विचार प्रभावी होकर पूर्णता को प्राप्त होते हैं और जीवन को एक सार्थक गति मिलती है। कार्य करता है हमारा शरीर, लेकिन उसे चलाता है हमारा मस्तिष्क और मस्तिष्क को चलाने वाला है मन। मन की उचित गति के अभाव में न तो मस्तिष्क ही सही कार्य करेगा और न ही शरीर। इसलिए शरीर को सही गति प्रदान के लिए मन को रोकना और उसे सकारात्मकता प्रदान करना अनिवार्य है।

जब भगवान बुद्ध और अंगुलिमाल का आमना-सामना हुआ, तो दोनों तरफ से ठहरने की बात हुई। अंगुलिमाल ने कड़ककर भगवान बुद्ध से कहा—"ठहर जा।" भगवान बुद्ध अत्यंत शांत भाव से बोले—"मैं तो ठहर गया हूँ, पर तू कब ठहरेगा?" एक आश्चर्य घटित हुआ। भगवान बुद्ध की शांत मुद्रा ने सारे परिवेश को शांत-स्थिर कर दिया। उस असीम शांति में अंगुलिमाल भी आप्लावित हो गया। वह ठहर गया और दस्युवृत्ति त्यागकर भगवान बुद्ध की शरण में आ गया।

शरीर और मन की गति में अंतर होना ही सब प्रकार की समस्याओं का मूल है। शरीर और मन की गति में सामंजस्य होना अनिवार्य है। रेलगाड़ी

के डिब्बे तभी अपने गंतव्य तक पहुँच पाते हैं, जब वे इंजन के साथ-साथ चलते हैं। इंजन और डिब्बों की गति समान होना तथा उनमें एक लय होना जरूरी है। इसी प्रकार शरीर और मन में भी संतुलन और लयात्मकता होना अनिवार्य है। मन भागा जा रहा है, लेकिन शरीर उसका साथ नहीं दे पा रहा है, तो समस्या खड़ी हो जाएगी। इंजन भागा जा रहा है, पर उसकी गति इतनी तेज है कि डिब्बे या तो उछल रहे हैं और पटरी से उतरने की अवस्था आने वाली है या उनके बीच की कड़ी टूटने वाली है। इंजन की गति को नियंत्रित कर इंजन और डिब्बों के बीच की कड़ी को टूटने से बचाना है।

डिब्बे ही नहीं, उनमें बैठे यात्री भी इस गति से प्रभावित होते हैं। क्या तेजगति से दौड़ते इंजन वाली रेलगाड़ी के डिब्बों में बैठे यात्री सुरक्षित रह सकते हैं। शायद नहीं। इसलिए इंजन तथा इंजनरूपी मन, दोनों की गति में ठहराव लाकर नियंत्रण करना जरूरी है।

जीवन में भाग-दौड़ का एक ही उद्देश्य है—आनंद की प्राप्ति, लेकिन जितना हम भाग-दौड़ करते हैं, आनंद से दूर होते चले जाते हैं। आनंद के लिए जीवन की गति तथा विचारों के प्रवाह को नियंत्रित कर उन्हें संतुलित करना जरूरी है। यही आध्यात्मिकता हमें सहज होना सिखाती है। हम सहज होकर अपने वास्तविक 'स्व' अर्थात चेतना से जुड़ते हैं। आत्मा में स्थित हो पाते हैं। यही वास्तविक आनंद अथवा परमानंद है। ❑

घटना 1960 की है। इटली में ओलंपिक खेल चल रहे थे। इन ओलंपिक खेलों में एक 20 वर्षीया अश्वेत युवती विल्मा रूडोल्फ भी भाग ले रही थी।

विशेष बात यह थी कि वह युवती विकलांग थी। चार वर्ष की आयु में उसे डबल निमोनिया हो गया था। इसके बाद काला बुखार होने के साथ पीलिया भी हो गया, फलस्वरूप उसे पैरों में ब्रेस पहननी पड़ी, लेकिन उसने एक सपना देख रखा था कि उसे दुनिया की सबसे तेज धाविका बनना है।

डॉक्टरों के मना कर देने के बाद भी उसने अपने पैरों की ब्रेस उतार फेंकी और अभ्यास में जुट गई। सारी दुनिया को चमत्कृत करते हुए विल्मा ने इटली ओलंपिक खेलों में तीन स्वर्ण पदक जीतकर विश्व की सर्वाधिक तेज धाविका का खिताब अपने नाम कर लिया। उसके संकल्प ने विश्व को यह दिखा दिया कि यदि दृढ़ आत्मविश्वास हो तो शारीरिक विकलांगता भी बाधा नहीं बन सकती।

बरफ से जुड़े रोचक तथ्य

सरदियों में बरफ सभी के लिए एक आकर्षण का केंद्र रहती है, खासकर मैदान के गरम इलाकों में रहने वालों के लिए। वैसे सभी को सरदियों में पहली बरफबारी का विशेष रूप से इंतजार रहता है। आश्चर्य नहीं कि पहाड़ों में बरफ का अंदेशा होते ही सैलानियों की भीड़ वहाँ जुट जाती है। हालाँकि यह बात दूसरी है कि लंबे समय तक बरफ के बीच रहने के लिए बाध्य लोगों में बरफ के प्रति आकर्षण कम होने लगता है, यहाँ तक कि इससे जुड़ी अतियों व कठिनाइयों के बीच लोगों को इससे बचते भी देखा जा सकता है। जो भी हो बरफ का संसार रहस्यमयी एवं रोचक तथ्यों से भरा हुआ है। प्रस्तुत है, इससे जुड़े कुछ रोचक एवं रोमांचक पहलू।

वास्तव में बरफ क्या है ? बरफ एक तरह से वर्षा का वह स्वरूप है, जो जलवाष्प के जमने पर बनती है। जब तापमान शून्य से नीचे चला जाता है और हवा में पर्याप्त नमी होती है, तो बादलों से जमे जल के क्रिस्टल के रूप में बरफ गिरती है। इसलिए बरफ गिरने के लिए वातावरण में नमी का होना आवश्यक होता है, जिसमें तापमान एक महत्त्वपूर्ण कारक रहता है। बरफ तब बनती है, जब वायुमंडल का तापमान शून्य डिगरी सेंटीग्रेड या इससे नीचे होता है।

सामान्यतया एक बरफ का टुकड़ा लगभग 200 बरफ के क्रिस्टलों से बनता है। इन क्रिस्टलों की छह भुजाएँ होती हैं। कहावत प्रख्यात है कि कोई भी बरफ के दो टुकड़े एक जैसे नहीं होते। सभी हिम कण अर्थात स्नो-फ्लेक्स अद्वितीय होते हैं, जो एक समान नहीं होते। बरफ का रंग सफेद दिखता है, जबकि वास्तव में यह पारभासी होता है।

जब प्रकाश इससे परावर्तित होता है, तो बरफ सफेद दिखाई पड़ती है। जब धूल या प्रदूषण इसे ढक देते हैं, तो बरफ काली दिख सकती है। अन्य रंगों के मिलने पर बरफ को रंग बदलते भी देखा जा सकता है।

वास्तव में जैसे ही हिम कण भूमि की ओर गिरते हैं, तो वे अपनी अनूठी यात्रा पर निकलते हैं। वे कैसे दिखेंगे, यह कई कारकों पर निर्भर करता है। अधिकांश बरफ 1 से 4 मील प्रतिघंटे की गति से धरती पर गिरती है।

सबसे बड़े बरफ के फाहे 9 मील प्रतिघंटे की गति पकड़ सकते हैं, लेकिन एक औसतन फाहा 1.5 मील प्रतिघंटे की गति लिए होता है और लगभग एक घंटे में भूमि पर पहुँचता है। शांत मौसम में बरफ के टुकड़े 1 किमी प्रतिघंटे की गति से गिरते हैं।

बरफ गिरने के बाद नीरव शांति छा जाती है, जिसके अपने कारण हैं। मालूम हो कि ताजी बरफ की परत ध्वनि को आर्द्र कर देती है, तथा इस तरह ध्वनि की तरंगों को सोख लेती है और जब यह बरफ पिघलती है, तो नवनिर्मित बरफ की परतें ध्वनि तरंगों को परावर्तित कर देती हैं, जिससे हम उनको दूर तक स्पष्टतया सुन पाते हैं।

बरफ के अपने स्वास्थ्यवर्द्धक लाभ हैं तो नुकसान भी। बरफ का सही उपयोग कई लाभ दे सकता है। त्वचा को ठंढक पहुँचाने, शांत करने तथा सूजन को कम करने में बरफ सहायक रहती है। इससे त्वचा की लालिमा से भी छुटकारा मिलता है।

इससे त्वचा पर विद्यमान अतिरिक्त तेल कम करने में भी सहायता मिलती है। शरीर पर हलकी-फुलकी चोट से रक्तस्राव हो रहा हो तो थोड़ी-सी बरफ उस जगह पर लगाकर रखने पर रक्तस्राव तुरंत बंद हो जाता है। मालूम हो कि बरफ ठंढी अवश्य होती है, लेकिन इसकी तासीर गरम मानी जाती है।

बरफ से जुड़े कुछ हानिकारक पहलू भी हैं, जिनसे सावधान रहने की आवश्यकता रहती है। प्राय: बरफ को पहली बार देखकर लोग इसको खाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। अधिक बरफ खाने पर दाँतों में दरद हो सकता है, धमनियाँ सिकुड़ सकती हैं तथा मुँह व पेट संबंधी कई तरह की समस्याएँ हो सकती हैं। अत: सीमा में ही रहकर इसका लुत्फ लें।

मालूम हो कि बरफ का 95% हिस्सा वायु होती है। साथ ही बरफ पानी से कम घनी होती है, अत: यह पानी पर तैरती रहती है और डूबती नहीं है। बरफ की यह चादर मोटी होती जाती है तो नीचे ठंढी हवा और गरम पानी के बीच एक इन्सुलेटर का काम करती है, अत: नीचे का जल तरल रहता है। यह भी एक रोचक तथ्य है कि पृथ्वी के आधे से अधिक लोगों ने बरफ नहीं देखी होती।

विश्व में कनाडा सबसे अधिक ठंढे देशों में से है, जहाँ इतनी ठंढ पड़ती है कि समुद्र का जल तक जम जाता है। सरदियों में यहाँ भारी बरफबारी होती है और तापमान माइनस 40 डिगरी तक नीचे गिर जाता है।

इसी तरह विश्व के कई क्षेत्र स्थायी रूप से बरफ की चादर से ढके रहते हैं। विश्व में सबसे अधिक गहरी बरफ का रिकॉर्ड जापान के शिगा प्रांत के माउंट इबुकी का माना जाता है, जहाँ 14 फरवरी, 1927 को लगभग 39 फीट बरफ दर्ज की गई थी। वैज्ञानिक शोधों से स्पष्ट हुआ है कि न केवल पृथ्वी पर बल्कि मंगल ग्रह पर भी हिमपात होता है।

निस्संदेह रूप में बरफ पृथ्वी की जलवायु प्रणाली का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। बरफ का आवरण पृथ्वी की सतह के तापमान को नियंत्रित करने में मदद करता है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों सहित विश्व के प्रमुख पर्वतों व घाटियों में जमी बरफ हिम-ग्लेशियरों के रूप में ताजा पेयजल के अकूत स्रोत हैं। इनके पिघलने के साथ जलस्रोत पुष्ट होते हैं, अधिकांश नदियों का अस्तित्व इन्हीं पर टिका हुआ है, जो बड़ी आबादी के शुद्ध जल की आवश्यकता को पूरा करती हैं।

इस तरह बरफ पृथ्वी पर इसके मौसम व जल स्रोत का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। बढ़ती गरमी एवं जलवायु-परिवर्तन के साथ इसका क्या संबंध है व ये कैसे मानवीय अस्तित्व एवं पृथ्वी के भविष्य को प्रभावित कर सकते हैं—इसको लेकर व्यापक स्तर पर वैज्ञानिक अध्ययन चल रहे हैं।

ओंकार पूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्यया।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥

अर्थात—ओंकारपूर्वक तीनों महाव्याहृतियों तथा त्रिपदा सावित्री मंत्र वेद का मुख कहा जाता है।

अत: जब भी बरफ के बीच घूमने का मौका मिले, तो बरफ के गोले बनाकर फेंकने का आनंद लें, बरफ मानव बनाकर अपने बचपन में लौट जाएँ तथा संभव हो तो स्कीईंग का लुत्फ उठाना न भूलें। साथ ही इससे जुड़े उपरोक्त तथ्यों पर भी विचार करते हुए इस आनंद के सूत्रधार ईश्वर को अवश्य याद करें, जिसने परमपिता व आदिशक्ति के रूप में प्रकृति के इस उपहार को अपनी संतानों के लिए सँजोकर रखा हुआ है। इस तरह बरफ के साथ बिताए पल निस्संदेह रूप से आपके लिए अस्तित्व के गहनतम अनुभवों से जुड़ने के यादगार पल साबित होंगे। ❑

आचार्य शंकर की हरिद्वार यात्रा

उच्चकोटि के साधकों, संतों, ऋषियों, योगियों व महापुरुषों का देह धारण करना वास्तव में देवकार्य, भगवत्कार्य एवं जीव-जगत् के कल्याणार्थ ही होता है। आचार्य शंकर भी एक ऐसे ही महायोगी, महादार्शनिक, महापुरुष थे, जिन्होंने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के लिए देह धारण की थी। ऐसे महामानव भगवद्इच्छा से ही भगवत्कार्य हेतु इस धरा पर अवतीर्ण होते हैं। समाधि-भूमि से उतरकर जितने दिन इस लोक में रहते हैं, वे भगवत्कार्य व जीव-जगत् के कल्याण में ही लगे रहते हैं।

ऐसे महापुरुष स्वभावत: निर्विकल्प समाधि में स्थित होते हैं, पर वे समाधि की भूमि से उतरकर भगवत्कार्य व लोक-कल्याण में लगे रहते हैं; क्योंकि यदि वे केवल समाधि अवस्था में रहें तो वे लोक-शिक्षा नहीं दे सकते। इसलिए मात्र आठ वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण कर सभी वैदिक ग्रंथों का अध्ययन व निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि करने वाले आचार्य शंकर कई ग्रंथों की रचना एवं जनमानस के बीच वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा करने जैसे महान कार्यों में लगे रहे।

उनकी तीर्थयात्राएँ भी लोक-शिक्षण व जगत्-कल्याण के लिए ही थीं। इसलिए विभिन्न धर्मस्थलों की स्थापना एवं तीर्थस्थानों की महिमा को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए ही आचार्य शंकर ने स्वयं तीर्थस्वरूप होते हुए भी तीर्थयात्राएँ कीं, तीर्थों का महत्त्व बताया और जन-जन को कल्याण के मार्ग पर चलने को प्रेरित किया। बारह वर्ष की आयु पूरी कर चुके आचार्य शंकर बदरिकाश्रम की ओर जाने के क्रम में प्रयाग से चलते हुए हरिद्वार पहुँच चुके थे।

उनके कई शिष्य व अन्य श्रद्धालु भी उनके साथ-साथ चल रहे थे। मार्ग में जो भी धर्मस्थल, देवस्थल, तीर्थस्थल पड़ता, उसका महत्त्व वे शिष्यों को, श्रद्धालुओं को समझाते, तीर्थों का दर्शन करते, देव-विग्रह की पूजा-अर्चना करते, शिष्यों से कराते। आचार्य शंकर अब हरिद्वार के विभिन्न तीर्थस्थलों के दर्शन कर रहे थे। हरिद्वार के पौराणिक महत्त्व को प्रकाशित करते हुए वे शिष्यों, साधकों, श्रद्धालुओं से कह रहे थे कि 'प्राचीनकाल से ही हरिद्वार (मायापुरी) ऋषि-मुनियों की तपस्या-भूमि रही है। यह सप्तर्षियों की तपोभूमि रही है। हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है।'

अपने शिष्यों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"देखो, यहाँ एक ओर हिमालय पर्वतमाला है तो दूसरी ओर पूर्व से पश्चिम की ओर से मिली हुई शैवालिक की दो शाखाएँ कैसा अनूठा दृश्य उत्पन्न कर रही हैं। पुराणों के अनुसार आदिकाल में हरिद्वार में ही ब्रह्मा जी ने विराट यज्ञ-अनुष्ठान किया था।" तभी एक शिष्य ने कहा—"गुरुदेव! गंगा में ब्रह्मकुंड की बड़ी महिमा बताई गई है। इसका कारण क्या है?"

आचार्य शंकर बोले—"हाँ वत्स! ब्रह्मकुंड की निस्संदेह बड़ी महिमा है। कहते हैं कि राजा भगीरथ जब मृत्युलोक में गंगा को ले आए, तो राजा श्वेत ने इसी स्थान पर ब्रह्मा जी की बड़ी आराधना की थी। राजा की आराधना से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने राजा से वर माँगने को कहा, तब

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

राजा ने यह वर माँगा कि यह स्थान आपके नाम से प्रसिद्ध हो। आप यहाँ पर भगवान विष्णु एवं भगवान शिव के साथ निवास करें और यहाँ पर सभी तीर्थों का वास हो। तब ब्रह्मा जी ने कहा कि ऐसा ही होगा और इस ब्रह्मकुंड में स्नान करने वाले ब्रह्मपद के अधिकारी होंगे। तभी से इसका नाम ब्रह्मकुंड पड़ा।''

आचार्य शंकर पुनः बोले—''वत्स! हरिद्वार के कण-कण में हरि और हर का वास है, निवास है, पर उन्हें अपनी आत्मा में अनुभव करने के लिए मन का निर्मल होना व हृदय का भगवान के लिए विशुद्ध प्रेम से भरा होना आवश्यक है। हरिद्वार वह पवित्र भूमि है, पवित्र धाम है, जहाँ बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-मुनियों ने तपस्या करके लोक-कल्याण के लिए भावना की है। इसलिए यहाँ का पूरा क्षेत्र ही आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत-प्रोत है। इस आध्यात्मिक ऊर्जा की अनुभूति पवित्र अंतःकरण वाले साधकों को अवश्य होती है। जिसका मन निर्मल होगा, जिसे भगवान से अगाध प्रेम होगा और जिसकी दया, धर्म, परोपकार में प्रीति होगी, उसका उद्धार अवश्य होगा। वत्स! सिर्फ गंगास्नान करने से काया का स्नान तो अवश्य होगा, काया की शुद्धि तो अवश्य होगी, पर चित्तस्नान, चित्तशुद्धि के लिए भगवद्ध्यान एवं साधना अवश्य करनी चाहिए।''

अपने गुरु शंकराचार्य के अमृतमयी उपदेश पाकर सभी शिष्य हर्षित हुए और आचार्य शंकर के चरणवंदन कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। अपने गुरु के चरण छूकर मानो वे सभी गुरु के बताए मार्ग पर चलने की अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त कर रहे थे। इस प्रकार आचार्य शंकर हरिद्वार तीर्थ के दर्शन करते हुए, हरिद्वार धाम की महिमा शिष्यों को सुनाते समझाते हुए, प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हुए ऋषिकेश की ओर चल पड़े। ❑

अमेरिका के छोटे गरीब परिवार में एक बालक रहता था। मेहनत-मजदूरी करके उसे जो भी मिलता, वह उससे अपना खरच चलाया करता था। उसको एक दिन पता चला कि उसके घर से थोड़ी दूरी पर एक व्यक्ति रहता है, जिसके पास जॉर्ज वाशिंगटन का जीवन चरित्र है। उसने उस व्यक्ति से पढ़ने के लिए वह पुस्तक माँग ली, पर जब लौटाने का दिन आया तो उस दिन भयंकर बारिश होने लगी। उस बरसात में वह पुस्तक भीग गई।

वह बालक उस व्यक्ति से बोला—''मैं आपको यह पुस्तक खरीदकर तो नहीं दे सकता, पर इसके बदले का परिश्रम करके मैं इसका मूल्य अवश्य चुका दूँगा।'' वह व्यक्ति उसकी श्रमशीलता व ईमानदारी से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने वह पुस्तक उसे भेंटस्वरूप दे दी। यही श्रमशील व ईमानदार बालक आगे चलकर संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

कार्यक्षेत्र का कार्यकुशलता पर प्रभाव

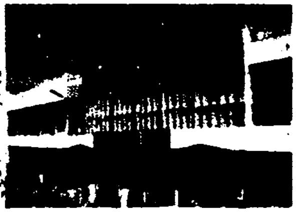

आधुनिकता और भौतिकवादी विकास के निरंतर विस्तृत होते फलक ने व्यक्ति और समाज की कार्यशैली एवं कार्यसंस्कृति में भारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है। पहले जीविका-निर्वाह की दृष्टि से नौकरी-पेशा करने वाले तथा नौकरी आदि का अवसर देने वाले—दोनों की संख्या बहुत कम हुआ करती थी, परंतु अब समय और जीवनशैली की माँग के परिवर्तित रूप में समाज के बहुत बड़े वर्ग को घर से बाहर निकलकर काम करना पड़ता है।

सरकारी हो अथवा निजीक्षेत्र हो—समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग कर्मचारी के रूप में काम करता है। ऐसे में काम करने वालों के कार्यस्थल और वहाँ से जुड़ी चुनौतियों पर विचार करना अत्यंत समीचीन है।

मेहनत, श्रम करना जीवन की आवश्यकता भी होती है और जीवन का एक श्रेष्ठ गुण अथवा मूल्य भी है, परंतु जब यही श्रम व्यावसायिक मानदंडों के अंतर्गत किया जाता है तो इसके रक्षण, पोषण एवं विकास की जिम्मेदारी व्यावसायिक प्रतिष्ठानों अथवा संस्थाओं की हो जाती है।

इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि किसी भी काम करने वाले को यदि अनुकूल और कार्य की दृष्टि से सकारात्मक माहौल प्रदान किया जाए तो कार्य संतुष्टि, गुणवत्ता और परिणामों में बहुगुणित वृद्धि होती है।

कर्मचारियों की कार्यक्षमता को उनके कार्यस्थल का परिवेश, माहौल सीधेतौर पर प्रभावित करता है। इसलिए सेवा प्राप्त करने वाले संस्थानों को यह सदैव ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि कर्मचारियों के लिए कार्य करने का माहौल अनुकूल बना रहे। उसमें विश्वसनीय, सहायक, प्रेरक और उत्साही तत्त्वों का समावेश हो।

कार्यस्थल के माहौल और कर्मचारियों की कार्यक्षमता के अंतर्संबंध को आधार बनाकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन प्रबंधन विभाग के अंतर्गत विगत दिनों एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन पर्यटन से जुड़े विशिष्ट आयाम होटल एवं होम-स्टे जैसे व्यावसायिक क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों से संबंधित है।

पर्यटन का व्यवसाय वैसे तो पूरे विश्व में तीव्रता से विकसित होने वाला क्षेत्र है, परंतु भारत के परिप्रेक्ष्य में यह एक नया उभरता व्यवसाय है। चूँकि भारत की पहचान धर्म, संस्कृति, संस्कार और जीवनमूल्यों को लेकर समूचे विश्व में विख्यात है, ऐसे में इन पहलुओं का समावेश एवं समन्वय करना तथा '**अतिथि देवो भव:**' की आतिथ्य-सत्कार की मूल भावना को पुष्ट करना भी भारतीय पर्यटन जगत् की उद्यमिता में सम्मिलित है।

इसके साथ ही यह एक नया रोजगार का क्षेत्र एवं देश, राज्य व विभिन्न क्षेत्रीय समाज के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की समृद्धि में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला क्षेत्र है और बहुत बड़ी संख्या में लोग इसमें काम कर जीवन सँवार रहे हैं।

ऐसे में यह आवश्यक है कि पर्यटन-क्षेत्र से जुड़े कर्मचारियों को उनकी कार्यक्षमता के अनुरूप

माहौल मिल सके, ताकि यह क्षेत्र अबाध गति से विकसित हो सके।

इसी तथ्य एवं आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह शोध अध्ययन कर्मचारियों और उसके कार्यस्थल के माहौल के महत्त्वपूर्ण पहलुओं, चुनौतियों और तथ्यात्मक समाधान को प्रस्तुत करने वाला एक विशिष्ट शोधकार्य है।

इस अध्ययन को वर्ष—2018 में शोधार्थी प्रदीप भट्ट द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० अरुणेश पाराशर के निर्देशन में पूर्ण किया गया है। इस विशिष्ट अध्ययन का शीर्षक है—'**इम्पेक्ट ऑफ वर्क एनवायरनमेंट ऑन दि एम्प्लाईस परफार्मेन्स-अ स्टडी ऑफ सेलेक्टेड फाइवस्टार होटल्स इन दिल्ली**।' प्रायोगिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन को कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

वैज्ञानिक रीति से संपन्न किए गए इस शोध अध्ययन के प्रयोग के लिए शोधार्थी द्वारा दिल्ली क्षेत्र के पंद्रह फाइव स्टार होटल्स का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन कर उन सभी से कुल 360 कर्मचारियों को चयनित कर अपने अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

इनमें मैनेजर, सुपरवाइजर व विभिन्न होटल सेवाओं से जुड़े स्तर के लोगों को भागीदार बनाया गया। सभी चयनितों से महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं जानकारी प्राप्त करने के लिए शोधार्थी द्वारा शोध उपकरण के रूप में एक प्रश्नावली का उपयोग किया गया, जिसे स्वयं शोधार्थी द्वारा शोध मानदंडों के अनुरूप तैयार किया गया है।

तथ्यों के संकलन हेतु प्रयुक्त प्रश्नावली में कार्यस्थल के माहौल से जुड़े जिन प्रमुख बिंदुओं को सम्मिलित किया गया; वे हैं—कार्यस्थल के प्रति जानकारी, मानव संसाधन से जुड़ी नीतियाँ और उसके लाभ, प्रबंधन, सहायता, प्रेरणा तथा प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक विकास के अवसर, भौतिक सुविधाएँ, स्वास्थ्य रक्षण, टीमवर्क एवं किए जाने वाले कार्यों का संतुलन एवं समायोजन आदि।

उक्त पहलुओं को आधार बनाकर संकलित आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया तथा तथ्यात्मक रूप से यह पाया गया कि कार्यक्षेत्र के वे कौन से महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, जो कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं कार्य संतुष्टि पर सीधा प्रभाव डालते हैं। इसके साथ ही कार्यक्षमता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारकों को भी शोध परिणाम के रूप में चिह्नित किया गया एवं उनकी विवेचना की गई।

शोधार्थी द्वारा अपने इस शोध अध्ययन से प्राप्त तथ्यों एवं परिणामों तथा इस क्षेत्र की अन्य शोध आदि महत्त्वपूर्ण जानकारियों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कुछ महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव एवं परामर्श प्रस्तुत किए गए हैं। शोधार्थी द्वारा सुझाए गए शोध निष्कर्ष के बिंदु हैं—

(1) कर्मचारियों को उचित वेतन एवं पदोन्नति देना, जो उनकी उम्र, अनुभव, योग्यता एवं प्रदर्शन के अनुरूप हो।

(2) कार्य संस्थान से जुड़े अनेक छोटे-छोटे दिए जा सकने वाले लाभ प्रदान करना, जैसे—भत्ता, प्रोत्साहन राशि, मुआवजा, स्वास्थ्य सुविधाएँ आदि। ये बातें कर्मचारी में स्वप्रेरणा और नैतिकता को बनाए रखने में प्रभावकारी होती हैं।

(3) कार्य करने की अवधि सुनिश्चित होनी चाहिए तथा अतिरिक्त समय में कार्यसेवा के लिए कर्मचारी की सहमति और सहजता को देखना आवश्यक है।

(4) कर्मचारियों के कार्य के अनुसार उससे संबंधित आधुनिक तकनीकों और संसाधनों की

उपलब्धता—कार्य की गुणवत्ता एवं मात्रा को बढ़ाने वाली होती है।

(5) कर्मचारियों के उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था हो, ताकि वे समाधानपरक सोच के साथ तथा टीम के प्रभावी सदस्य के रूप में बेहतर कार्य करने में सक्षम हों।

(6) टीम-भावना के साथ कार्य करने तथा सामंजस्य बनाए रखने में विशिष्ट कर्मचारियों की सहायता लेनी चाहिए।

(7) कर्मचारी एवं उसके कार्यस्थल तक सर्वोच्च प्रबंधन की सीधी पहुँच होनी चाहिए।

(8) प्रबंधन को समय-समय पर कर्मचारियों से परामर्श कर अपनी नीतियों में आवश्यक सुधार करना चाहिए।

(9) संस्थान के विभिन्न निकायों में बेहतर तालमेल के लिए सामूहिक कार्यशाला एवं प्रशिक्षण किया जाना चाहिए।

(10) अनुशासन, समस्या समाधान एवं कार्य संबंधी नीतियों की संरचना स्पष्ट एवं प्रभावी होनी चाहिए।

(11) होटल्स जैसे क्षेत्र में बातचीत एवं व्यवहार की कुशलता महत्त्वपूर्ण होती है। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

(12) संस्थान के लक्ष्य के प्रति कर्मचारियों को उत्साहित एवं प्रेरित करते रहना चाहिए। संस्थान की उपलब्धियों से उसके प्रत्येक कर्मचारियों में भी इस उपलब्धि के प्रति गौरव-भावना उत्पन्न हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए।

(13) कार्यस्थल पर साफ-सफाई, स्वच्छता आदि का सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए।

(14) समय-समय पर कर्मचारियों से उनके कार्यस्थल एवं कार्यसंतुष्टि के संबंध में प्रत्युत्तर प्राप्त कर उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाने तथा समस्याओं के समाधानपरक उपायों को कुशलतापूर्वक लागू करना चाहिए।

(15) कर्मचारियों को उनके बेहतर प्रदर्शन, उपलब्धि आदि के लिए प्रोत्साहन, इनाम आदि देना चाहिए।

(16) कार्यस्थल पर सदैव सकारात्मक रवैया एवं व्यवहार में विनम्रता एवं संयम बनाए रखना हर स्तर पर आवश्यक होता है।

शोधार्थी के उक्त सुझाव न केवल होटल्स अथवा पर्यटन-क्षेत्र के लिए प्रभावी हैं, अपितु प्रत्येक उस क्षेत्र के लिए प्रभावी हैं, जो कर्मचारियों की सेवा प्राप्त कर अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं। कर्मचारी को कार्य करने के लिए अनुकूल माहौल न मिलने पर उसकी कार्यक्षमता तो प्रभावित होती है- साथ ही लंबे समय तक कार्य-असंतुष्टि की भावना उसे अन्य स्थान पर जाने तथा मौजूदा संस्थान को छोड़ने पर भी विवश कर देती है।

अत: ऐसी समस्याओं और चुनौतियों के समाधान में कार्यस्थल के माहौल को कर्मचारियों के अनुकूल बनाने का उपाय ही सर्वाधिक प्रभावी एवं कारगर प्रक्रिया है, जिसके लिए यह शोध अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण जानकारी, प्रेरणा एवं सुझाव प्रस्तुत करता है। ❑

इस संसार में अंधकार भी है और प्रकाश भी, स्वर्ग भी है और नरक भी, पतन भी है और उत्थान भी, त्रास भी है और आनंद भी। इन दोनों में से जिसे चाहे, मनुष्य इच्छानुसार चुन सकता है। कुछ भी करने की सभी को छूट है, पर प्रतिबंध इतना ही है कि कृत्य के प्रतिफल से बचा नहीं जा सकता। स्रष्टा के निर्धारित क्रम को तोड़ा नहीं जा सकता। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

अश्रद्धा से किए गए कर्मों का परिणाम

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की छब्बीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के सत्ताईसवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान कृष्ण कहते हैं कि यज्ञ, तप एवं दानरूपी क्रिया में जो निष्ठा है, वह भी सत् कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' ही कहा जाता है। यहाँ श्रीभगवान का यह अभिप्राय है कि साधक के हृदय में सात्त्विक कर्मों; यथा यज्ञ, तप एवं दान को करने के लिए जो निष्ठा, लगन एवं तत्परता होती है—वह भी परमात्मा के 'सत् भाव' या 'सद्भाव' का ही स्वरूप है। यहाँ पर इस सत्य को स्पष्ट किया गया है कि उक्त कर्म यदि परमात्मा के निमित्त निष्काम भाव से किए जाएँ तभी वे 'सत्' भाव में सम्मिलित किए जाते हैं। ऐसा कहने के पीछे का कारण स्पष्ट है कि यज्ञ, तप एवं दान जैसे कर्म तो वे भी करते हैं, जिनके भाव सात्त्विक नहीं होते।

उदाहरण के तौर पर यज्ञ दक्ष प्रजापति ने भी किया था, परंतु उस यज्ञ का भाव परमात्मा के निमित्त न होकर स्वयं के अहंकार का पोषण था, अतः वह यज्ञ अशुभ परिणाम ही लेकर के आया। ऐसे ही अनेक असुरों के द्वारा किए गए तपोनुष्ठानों का विवरण पौराणिक आख्यानों में मिलता है, जिनकी परिणति अंततः अशुभ ही हुई थी। यही कारण है कि भगवान कृष्ण यहाँ इन कर्मों का उल्लेख तो करते हैं, परंतु साथ ही उनमें यह शर्त भी जोड़ते हैं कि यदि इन कर्मों को करते समय परमात्मा के प्रति निष्काम समर्पण जुड़ा हो, तभी ये कर्म सद्भाव का प्रतीक बन पाते हैं।]

इसके उपरांत श्रीभगवान इस अध्याय का अंतिम श्लोक कहते हैं कि

अश्रद्धया हुतं दत्तं, तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ *28*॥

शब्दविग्रह—अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्, असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! (**पार्थ**), बिना श्रद्धा के किया हुआ (**अश्रद्धया**), हवन (**हुतम्**), दिया हुआ दान (**दत्तम्**), (एवं) तपा हुआ (**तप्तम्**), तप (**तपः**), और (**च**), जो (कुछ भी)(**यत्**), किया हुआ शुभ कर्म है (**कृतम्**), वह समस्त (**तत्**), असत् (**असत्**), इस प्रकार(**इति**), कहा जाता है (**उच्यते**) (इसलिए) वह (**तत्**), न (तो) (**नो**), इस लोक में (लाभदायक है) (**इह**) और (**च**), न (**न**), मरने के बाद ही (**प्रेत्य**)।

अर्थात हे पार्थ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया जाए वह 'असत्' कहा जाता है और उसका फल न तो यहाँ प्राप्त होता है और न मरने के बाद ही मिलता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

यह एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक श्रीभगवान ने यहाँ कहा है कि वे कह रहे हैं कि कर्म के परिणाम का आधार श्रद्धा है। यदि श्रद्धा से युक्त वे कर्म नहीं हैं तो वे चाहे कोई से भी कर्म क्यों न हों, उनका परिणाम न तो इहलोक में प्राप्त होता है और न ही परलोक में मिल पाता है।

प्रश्न उठता है कि ऐसे लोग यदि शास्त्र विहित कर्मों को नहीं मानते, उनमें श्रद्धा का अभाव होता है तो वे ऐसे कर्मों को करते ही क्यों हैं? इसका कारण यह है कि वे कर्मों से मिलने वाले प्रचलित परिणामों के इच्छुक होते हैं, उन्हें निष्कामता भाव से करने के नहीं।

तप करने से शक्ति मिलेगी, दान करने से सिद्धि मिलेगी—ये लालसाएँ उन्हें इन कर्मों को करने के लिए प्रेरित करती हैं, निष्कामता या प्रभु के प्रति समर्पण का भाव नहीं पैदा करतीं।

लोककथाओं में एक कंजूस व्यक्ति की कथा आती है। उसने कहीं पर पढ़ा कि पूजा-उपासना से बड़ा लाभ होता है। लाभ की बात सुनकर वह पूजा करने को तत्पर भी हो गया, परंतु पूजा भी वह ऐसी करना चाहता था, जिसमें एक पैसा खरच न करना पड़े। बहुत सोच-विचारकर वह मानस पूजा करने को बैठा, उसे लगा कि मन-ही-मन पूजा करने से तो कोई खरचा नहीं होने वाला है।

वह मन-ही-मन रुद्राभिषेक करने को बैठा। मन में शिवलिंग के ऊपर पुष्प, अक्षत, जल, दूध, शर्करा उसने डाले। जैसे ही घी चढ़ाने लगा— वैसे ही मन में विचार आया कि कहीं ज्यादा घी तो नहीं डल गया। यह सोचकर उसने मन में भी अपना हाथ रोक लिया। तब भगवान प्रकट हुए और बोले—"मन की पूजा में भी इतनी संकीर्णता लेकर बैठा है? इसका क्या परिणाम तुझे प्राप्त होगा।"

कुछ ऐसा ही वे लोग करते हैं, जिनकी ओर श्रीभगवान यहाँ इशारा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि अश्रद्धा से किए गए कर्म 'असत्' कहलाते हैं। छोटे-से-छोटा, साधारण-से-साधारण कर्म भी यदि ईश्वर-निष्ठा के साथ किया जाए तो बृहत् परिणाम लाता है, परंतु बड़े-से-बड़ा कर्म भी यदि संकीर्ण मनोवृत्ति के साथ किया जाए तो असत् ही कहलाता है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है कि

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी।
श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥

अर्थात असुर लोग परलोक, पुनर्जन्म, ईश्वर आदि में श्रद्धा नहीं रखते एवं उसी अश्रद्धा के भाव से वे क्रियाएँ करते हैं। इसीलिए भगवान यहाँ इंगित करते हैं कि हमारे लिए यही उचित है कि हम शास्त्रविधि कर्मों को श्रद्धापूर्वक एवं निष्काम भाव से करें। तभी उनका परिणाम संसार में एवं संसार से परे मिल पाता है।

(क्रमशः)

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

—सुभा. भां. 173/609

अर्थात निश्चय ही कामनाएँ काम के उपभोग से कभी शांत नहीं होतीं। प्रत्युत जैसे अग्नि में आहुति डालने से अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार काम के उपभोग से कामनाएँ बढ़ती हैं।

भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार का केंद्र–विश्वविद्यालय

समय परिवर्तनशील है। सदियों से देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप ज्ञान का विस्तार होता आया है। स्वयं भगवान ही ज्ञान की इस अक्षय परंपरा के नवोन्मेष हेतु समय-समय पर अवतार लेते हैं। पूज्य गुरुदेव का दर्शन हम इसी स्वरूप में कर सकते हैं, जिन्होंने मानवकल्याण निहित युगसाहित्य का सृजन किया व साथ ही अपने पुत्रवत् शिष्यों से यह अपेक्षा रखी कि वे इसे जन-जन तक पहुँचाकर मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग के अवतरण के दिव्य संकल्प को पूर्ण करेंगे। यदि शांतिकुंज इस योजना का पूर्वार्द्ध है तो देव संस्कृति विश्वविद्यालय इस योजना का उत्तरार्द्ध।

पूज्यवर के ज्ञान से लाभान्वित होने के उद्देश्य से विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्(आईसीसीआर) के संयुक्त तत्त्वावधान में 4-6 दिसंबर को नई दिल्ली में ज्ञानभारती कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें 39 देशों के 80 से अधिक वरिष्ठ शिक्षाविदों के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा मार्गदर्शित एक दल ने प्रतिभाग किया।

इस तीन दिवसीय सम्मेलन में माननीय विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर जी, माननीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान जी, माननीय आयुष मंत्री श्री सर्बानंद सोनोवाल जी, माननीय संस्कृति राज्यमंत्री श्रीमती मीनाक्षी लेखी जी सहित देश-विदेश के विभिन्न प्रतिष्ठित शैक्षणिक एवं गैर-शैक्षणिक संस्थानों के शीर्ष अधिकारियों ने आईसीसीआर अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्रबुद्धे जी की अध्यक्षता में प्रतिभाग किया।

सम्मेलन में संस्कृत, हिंदी, अन्य भारतीय भाषाओं सहित योग, शास्त्रीय संगीत और आयुर्वेद जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा के साथ दुनियाभर में भारतीय ज्ञानपद्धति के प्रचार-प्रसार के लिए आने वाली चुनौतियों और उनके समाधान पर मंथन हुआ।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने कार्यक्रम में नॉलेज पार्टनर की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए कॉन्फ्रेंस की रिपोर्ट प्रस्तुत की एवं देश-विदेश से आए वरिष्ठ शिक्षाविदों को भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु गायत्री परिवार द्वारा चलाए जा रहे असंख्य अभियानों से अवगत कराया।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के पूर्व सीएमडी एवं वर्तमान में चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री के मुख्य सलाहकार डॉ. एच.पी. कुमार जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन व प्रतिकुलपति जी से भेंट का क्रम संपन्न हुआ। डॉ. एच. पी. कुमार जी ने आगमन के दौरान विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं संचालित सभी रचनात्मक गतिविधियों को गहनता से समझकर सराहना की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रतिकुलपति जी से वार्त्तालाप के मध्य में डॉ. एच. पी. कुमार जी ने बताया कि उत्तर प्रदेश के लखनऊ में सन् 1993 में अखिल विश्व गायत्री परिवार के तत्त्वावधान में अश्वमेध महायज्ञ में मुझे शामिल होने का अवसर मिला था, जिसे मैं अपने जीवन का एक बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूँ।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

मानव गढ़ने की टकसाल देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश के कैबिनेट मंत्री एवं बलिया से विधायक श्री दयाशंकर सिंह जी का भी आगमन हुआ। आगमन के पश्चात माननीय मंत्री जी की देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट संपन्न हुई।

भेंट के मध्य में उन्हें अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय का संक्षिप्त परिचय दिया गया एवं विश्वविद्यालय परिसर के आध्यात्मिक केंद्र प्रज्ञेश्वर महाकाल का दर्शन कराने के साथ ही एशिया के प्रथम बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र एवं स्वावलंबन केंद्र का भी भ्रमण कराया गया। विश्वविद्यालय के वातावरण एवं चल रही रचनात्मक गतिविधियों की माननीय मंत्री जी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वामी विवेकानंद की पावन जयंती मनाई गई। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के श्रीराम स्मृति उपवन में स्थापित स्वामी विवेकानंद की प्रतिमा पर विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा माल्यार्पण किया गया व साथ ही स्वामी विवेकानंद एवं पूज्य गुरुदेव के सद्विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प भी लिया गया।

75वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। समस्त विश्वविद्यालय परिवार की उपस्थिति में अखिल विश्व गायत्री परिवार की सर्वप्रमुख एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की कुलसंरक्षिका परमश्रद्धेया शैलबाला पण्ड्या जी ने विश्वविद्यालय परिसर में ध्वजारोहण कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ई-मेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

ज्योति कभी बुझेगी नहीं

(उत्तरार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों में एक अद्वितीय सारगर्भिता भी है एवं हृदय को झकझोर देने वाले भावों की प्रगाढ़ता भी। अपने इस प्रस्तुत व्याख्यान में परमवंदनीया माताजी सभी गायत्री परिजनों को यही स्मरण दिलाती हैं कि हम सभी पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी के अंग-अवयव हैं। उन्हीं की भुजाएँ बनकर, अंग बनकर एवं प्रतिनिधि बनकर हमें उनके कार्यों को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। वंदनीया माताजी कहती हैं कि वे दोनों सभी गायत्री परिजनों की देख-भाल उसी भाँति करते रहेंगे, जैसे एक टिटिहरी अपने बच्चों की करती है। वे हर कार्यकर्त्ता को यह आश्वासन प्रदान करती हैं कि उनके द्वारा प्रज्वलित की गई यह ज्योति कभी बुझेगी नहीं, वरन अनवरत आगे बढ़ती, विकसित होती रहेगी। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

संकल्प लें दहेज नहीं लेंगे

आपको संकल्प लेना चाहिए कि हम दहेज नहीं लेंगे। अपनी बच्चियों को भेड़ियों के यहाँ नहीं देंगे। डॉक्टर नहीं होगा, इंजीनियर नहीं होगा, तो मास्टर होगा, मास्टर नहीं होगा, तो और कुछ होगा, रोज कमाएगा, रोज खाएगा, लेकिन अपनी लड़की को हम योग्य बनाएँगे। अब तो मैं यह कह रही थी कि बाप बेचारा गरीब था, दहेज दे नहीं सकता था; बाप तो बाहर गया किसी काम से और तभी कमरे में आकर के तीनों लड़कियों ने फाँसी लगा ली।

बेटे! इस अनाचार को अपने लोग ही मिटाएँगे। कौन मिटाएगा? विचारों की क्रांति ही मिटाएगी। अन्यान्य जो कुरीतियाँ हैं, उनके लिए भी आपको जद्दोजहद करनी चाहिए। वह किससे करेंगे? डंडे से करेंगे? डंडे से नहीं करेंगे, जबान से करेंगे, विचारों से करेंगे।

नशाखोरी से लेकर अन्यान्य जो दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, उनको हटाने के लिए और अच्छाइयों का समर्थन करने के लिए आपको आगे आना चाहिए, आपको यह कार्यकर्त्ता बताएँगे कि क्या करना है। आपको नारी जागरण के लिए कार्य करना है, नारियों को आप आगे लाइए। नारियों को मैं देख रही हूँ, तो मुझे यह मालूम पड़ रहा है कि आधे-से भी ज्यादा तो बिलकुल अपंग हैं। एक हिस्सा अपंग क्यों रहने देंगे? आप आगे बढ़िए और जो बगैर पढ़ी-लिखी हैं, इनको पढ़ाइए और जो थोड़ा पढ़ी-लिखी हैं, उनको आगे बढ़ाइए। इनकी बहुत जरूरत है, बहुत आवश्यकता है।

21वीं सदी-नारी सदी

21वीं सदी में समझ लेना कि राष्ट्र को नारियाँ सँभालेंगी, तो फिर यह आधा अंग बेकार क्यों पड़ा रहेगा? नहीं साहब! हम तो दकियानूसी हैं। जैसा खुद है, वैसा ही स्त्री के प्रति अपनी भावना रखता

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

है। जैसे खुद संकीर्ण है, वैसे ही संकीर्ण उनको समझ रखा है। नहीं, आगे बढ़ाइए। इनकी बहुत जरूरत है। इनको यहाँ भेजिए, तीन-तीन महीने का प्रशिक्षण यहाँ दिलाएँगे। बेटे! यह वातावरण के परिशोधन के लिए बहुत आवश्यक है और इसके लिए आप लोगों को कदम उठाना ही चाहिए।

ये मैंने तीन बातें आपको बताईं। एक तो विचार क्रांति की, एक दीपयज्ञ की दो और नारी जागरण की तीन। इन क्रियाकलापों के अतिरिक्त जो आपको बताए नहीं गए और जो महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं—आस्था और वे हैं—व्यक्ति की श्रद्धा और भावना। उसके अंदर यदि भावना नहीं है, आस्था नहीं है तो वह जड़ है बेटा, जड़ से कुछ काम नहीं करा सकती हूँ, जड़ किसी काम का नहीं है।

अखंड दीप से लें प्रेरणा

चंद्रगुप्त यदि जड़ होता तो कैसे बनाया जाता, बताना? जड़ नहीं था, उसका समर्पण था। उसको बना दिया। गुरु का अनुदान और वरदान मिलता है और मिलता रहा है और मिलता रहेगा। इसमें गुरु की संकीर्णता नहीं है, इसमें संकीर्णता है शिष्य की कि लेने वाले का दामन कैसा है? वो सँभाल भी सकता है कि नहीं। जितना छोटा बरतन होगा, उतना ही थोड़ा पानी आएगा और बड़ा बरतन होगा, तो ज्यादा पानी आएगा। यह तो पात्रता के ऊपर है, सीधी-सादी बात है, देने वाले ने कंजूसी नहीं की है।

देने वाला तो देता है। क्यों साहब! अर्जुन ही क्यों बना और क्यों नहीं बने? अरे इसलिए नहीं बने कि उनकी पात्रता नहीं थी। एकलव्य का समर्पण था। समर्पण था, तो अर्जुन से भी ज्यादा बन गया और शिवाजी? छत्रपति शिवाजी हो गए। क्यों हो गए? अरे! इसलिए हो गए कि उनका समर्पण था। उन्होंने कहा—जैसा आप बनाना चाहें, हम वही बनने के लिए तैयार हैं। हाँ, वही बनने के लिए तैयार हैं। हमारा अखंड दीपक है। आप जब कभी भी यहाँ आ पाएँ, हम नहीं भी रहें, तो बेटे! आप उसको नमन करना, आप दर्शन करना, आपको हम दोनों प्राणी उसी में दिखाई पड़ेंगे। उसी से आपको प्रेरणा मिलेगी और उसी में आपको हम दोनों की झलक मिलेगी, जिसके पास बैठकर उन्होंने 24-24 लक्ष के पुरश्चरण किए और अभी भी वह अखंड ज्योति प्रज्वलित है।

वह हमारी बहुमूल्य पूँजी है। हम कोई पूँजी लेकर तो नहीं आए; लेकिन वह हमारी सबसे बड़ी पूँजी है।

'श्रद्धा' का अर्थ है परिपूर्ण विश्वास। ऐसा विश्वास जिसमें शंका-कुशंका, तर्क-वितर्क आदि की कोई गुंजाइश न हो। 'प्रज्ञा' का अर्थ है स्वविवेक। इतना दृढ़ जिसमें संकल्प ही मूर्तिमान हो सके। किसी से पूछने की कोई गुंजाइश ही न रहे। —*परमपूज्य गुरुदेव*

इसको कोई हमसे जुदा नहीं कर सकता है और सब को जुदा कर सकता है। हमारे बेटे-बेटियों को जुदा कर सकता है। हमारे संबंधियों को जुदा कर सकता है, लेकिन हमारे अखंड दीपक को हमसे जुदा नहीं कर सकता; क्योंकि हम उसमें समाये हुए हैं और उसी से प्रेरणा पाई है, उसी से शक्ति पाई है। उससे हम अलग कैसे रहेंगे? जब हमारा शरीर नहीं रहेगा, तो हमारी आत्मा उसमें रहेगी।

शरीर तो बेटे! हाड़-मांस का है, जो सबका होता है, वही उसका होगा। उसके लिए भी हमने

कह रखा है कि हमारा शरीर भी इस शांतिकुंज से बाहर नहीं जाएगा। यहीं गड्ढे खोदकर के हम दोनों को दफनाया जाएगा। हमने सब लड़कों से यह कह दिया है कि हमारा शरीर भी यहीं रहेगा। तो हमारी आत्मा के दर्शन वहाँ करना और शरीर के आप यहाँ करना। हम आप से अलग कहाँ हैं? बच्चों से अलग माँ-बाप रहेंगे कहीं? नहीं, कभी भी नहीं रह सकते।

बेटे! आपके, हमारे गुरु और शिष्य के जो बंधन हैं, जन्म-जन्मांतरों तक चलेंगे, इस जन्म में भी और अगले जन्म में भी। इस जन्म का तो ठेका है ही, अगले जन्म की, अगले जन्म में देखी जाएगी, पर इस जन्म में तो हमारा, आपका बंधन है ही, वह कभी टूटने वाला नहीं है, यदि सच्ची आस्थाओं से और निष्ठा से और श्रद्धा से जुड़ा हुआ है। यदि आपकी श्रद्धा डगमगा गई, तो हम नहीं कह सकते, फिर हमारा कोई दावा नहीं है। फिर तो हमको पश्चात्ताप होगा और हमको अपने मन में दुःख होगा कि अरे! कैसा बढ़िया लड़का था, देखो इसकी निष्ठा कहाँ गई, बेचारा यह कहाँ डगमगा गया? था तो बड़ा अच्छा। था तो बड़ा भोला, पर यह कैसे डगमगा गया?

उसको कुछ हो गया, अपने बीबी-बच्चों में कुछ हो गया, हो गया, तो हो गया। है तो हमारा ही, पर बेटे! वे भाव नहीं रहेंगे, जो रहने चाहिए, हमको दुःख होगा। आप में से कोई भी भुजा हमारी कटती है और कोई भी भुजा हमारी इधर-उधर होती है, तो हमको आंतरिक पीड़ा होती है और यह पीड़ा होती है कि यह हमारी भुजा गिर कैसे पड़ी? यह कट कैसे गई? यह लगाई क्यों नहीं गई? इसका ऑपरेशन कैसे नहीं हुआ? कोई कुशल डॉक्टर नहीं मिला, या तो हममें कमी है या आपमें कमी है।

क्या है श्रद्धा?

कहीं-न-कहीं कमी है बेटे! संभव है, हममें कोई कमी हो। हममें नहीं है, तो आपकी आस्थाओं में कमी है, आपकी निष्ठा में कमी है या आपकी श्रद्धा और आपकी निष्ठा इस लायक नहीं है कि आप जुड़े रह सकें। आप तो थोड़ी-थोड़ी बाधाओं में, थोड़ी-थोड़ी मुश्किलों में डगमगा जाते हैं। जरा भी विपरीत परिस्थिति आई, तो आप तिलमिला गए और जाने कहाँ, किधर आपका चिंतन चला गया कि आपकी श्रद्धा कहाँ रही?

श्रद्धा तब होती है बेटे! गुरुजी ने स्वतंत्रता आंदोलन में कार्य किया था, तो सारे घर के लोग विरोधी थे; लेकिन उन्होंने बीड़ा उठाया था कि नहीं, हमको तो काम करना ही है। तो उन्होंने इतना कार्य किया है।

यूपी में आँवलखेड़ा से जुड़े जहाँ अपने बाईस गाँव हैं, सारे बाईस गाँव का लगान उन्होंने माफ करा दिया। वह समय की पुकार जो स्वतंत्रता आंदोलन में थी, जिन्होंने कार्य किया था, उनको तो आज कितनी पेंशन मिल रही है? चार सौ तो प्रांत की मिल रही है और छह सौ केंद्र सरकार की मिल रही है, एक हजार मिल रही है और फर्स्ट क्लास के पास मिल रहे हैं और हमने तो सुना है, अब हवाई जहाजों के भी टिकट मिलने वाले हैं। यह सब गुरुजी ने राहत फंड में दे दिए।

कितने लाभ में हैं? वे जिन्होंने उस समय निस्स्वार्थ भाव से कार्य किया था। अब तो उसमें स्वार्थ भी घुस गया, लाइए साहब! दीजिए, हम तो वहाँ गए थे और स्वतंत्रता आंदोलन में कष्ट झेले थे। धत् तेरे की। स्वार्थ से नहीं गए थे, परमार्थ से गए थे। राष्ट्रीय भावनाओं से गए थे, तो आज भी उनको घूमने का और किसका-किसका लाभ मिलता है। आपको मिलेगा? आपको भी मिलेगा,

पर समय चूक जाओगे, तो नहीं मिलेगा। चूक मत जाना, जैसे और लोग चूक गए हैं, जो अपने घर के काम-धंधे में लगे रहे, बीबी-बच्चों को ही देखते रहे, वह भी हाथ मलते रह गए।

उन्होंने कहा—हाय रे! हम भी होते, चाहे भले छह महीने की क्या एक दिन हवालात में हो आते, तो कम-से-कम हमें भी पेंशन मिल तो जाती। हाँ, बेटे! अब भी बहुत से लोग हैं, जो पछता रहे हैं। हमें तो मिला था। अभी गुरुजी की पेंशन उन्होंने डिक्लेयर की और उन्हें दी भी, परंतु उन्होंने कहा—हमको नहीं चाहिए। किनको चाहिए? उनको दो, जो जरूरतमंद हैं, हमको नहीं चाहिए, हमारे तो हाथ-पाँव मौजूद हैं, हम क्या करेंगे पेंशन लेकर के और सरकार का खाएँगे? अरे! हम काहे को सरकार का खाएँगे। सरकार का आज तक नहीं लिया है, अब सरकार की पेंशन लेंगे? हमारे हाथ-पाँव कहाँ चले गए। हमने राष्ट्र के लिए काम किया है, न कि पेंशन के लिए किया है। पेंशन के लिए नहीं किया।

समय की पुकार

बेटे! यह समय की पुकार है और समय की पुकार नहीं सुनेंगे, तो आप पीछे पछताते रह जाएँगे। यह समय ऐसा है कि गुरुजी से जितना चाहें आप ले सकते हैं। बेटे! हम से आप ले सकते हैं, पर साथ में शर्त यही है कि आप की पात्रता कितनी है? आप अपनी पात्रता का विकास करना। आपकी कोई कष्ट-कठिनाई होगी, बेटे! अभी हम जिंदा हैं। अभी कहीं नहीं जा रहे हैं और हर कष्ट-कठिनाई में आपको ऐसा महसूस होता रहेगा कि गुरुजी-माताजी बिलकुल हमारे समक्ष हैं।

प्रारब्धवश आपकी समस्या हल नहीं होती होगी, तो कह नहीं सकते। मान लीजिए आपका प्रारब्ध ही ऐसा उलटा है कि हम आपकी उतनी सेवा और मदद नहीं कर पा रहे हैं, पर आपको हिम्मत जरूर दे रहे होंगे, आपको साहस जरूर दे रहे होंगे, आपको बल जरूर दे रहे होंगे, आपको हिम्मत दे रहे होंगे, आपकी पीठ थपथपा रहे होंगे, आपका सर सहला रहे होंगे और कहेंगे कि बेटे! तू काहे को घबरा रहा है? चल आगे आ जा। आगे आ गया। कहाँ चला गया। समर में चल, लड़ाई के मैदान में चल।

फार्म—4

(1) प्रकाशन स्थान	मथुरा
(2) प्रकाशन अवधि	मासिक
(3) मुद्रक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा
(4) प्रकाशक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
(5) संपादक का नाम	डॉ० प्रणव पंड्या
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	शांतिकुंज, हरिद्वार
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.)

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं। —*मृत्युंजय शर्मा*

पहले कोई जमाना था, जबकि क्षत्रियों के कुल में से एक, कुटुंब में से एक व्यक्ति सेना में भरती होता था और ब्राह्मण परिवार में से एक ब्राह्मण समाजसेवा के लिए होता था। उन्होंने कहा

कि सारे-के-सारे हैं, अब इसमें से एक परिवार में से एक जाएगा और समाजसेवा करेगा और सिक्खों के गुरु में क्या था कि हर परिवार में से एक गुरु के लिए होता था। गुरु के लिए उसका सिर समर्पित है।

बेटे! हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप अपने परिवार में से कम-से-कम एक व्यक्ति को समर्पित कर जाइए। आपके यहाँ कमाने वाले आपके लड़के हैं, फिर भी आप उसी दलदल में पड़े हैं, क्यों पड़े हैं? आपका भाई कमाने वाला है, आपने इतना कमा लिया है, तो फिर क्यों आप उसमें पड़े हैं? आप उसमें से तो निकलकर आइए? आपको मिशन माँगता है, गुरुजी माँगते हैं और हम आपको माँगते हैं कि आप आ जाइए।

यदि आप नहीं आएँगे तो फिर आपने डंडा देखा है कि नहीं देखा, नहीं, रहने दो, अब नहीं कहूँगी, नहीं तो बच्चे कहेंगे कि माताजी यह क्या कह रही हैं? अभी तो प्यार की बात कह रही थीं, अब डंडा की बात कर रही हैं। डंडे की बात मैं नहीं कहती बेटे! जब विश्वामित्र गए थे और राजा दशरथ जी से राम और लक्ष्मण को माँगा था और राम, लक्ष्मण नहीं आए होते, तो वे केवल राजकुमार-के-राजकुमार ही रह गए होते। राजा दशरथ के पुत्र राजकुमार भगवान राम हो गए थे। यदि न गए होते, तो क्या हो जाते? बिलकुल नहीं होते भगवान राम।

समर्पण से बने भगवान

भगवान बनने की विद्या किसने दी? विश्वामित्र ने बनाया और विश्वामित्र ने तब बनाया, जब वे समर्पित हो गए। उन्होंने फिर मुड़कर के नहीं देखा कि हम तो राजकुमार थे। वे ऐसे रहते थे, बेटे! जो जमीन पर सो गए। लकड़ी काटकर ला, हाँ! लकड़ी काटेंगे, फूल बीन के ला, हाँ! फूल बीन के लाएँगे। उन्होंने कहा अच्छा यज्ञशाला की रखवाली करो, यहाँ राक्षस आएँगे। धनुष-बाण लेकर के खड़े हो गए। उनसे जो कहा—वही किया। वे बन गए। बन जाएँगे, आप में से ही बन जाएँगे।

हाँ! आप में से ही बन जाएँगे। असली-असली तो बन जाएँगे और नकली-नकली नहीं बनेंगे। अब यह आपके ऊपर है कि आप असली हैं कि नकली हैं। अपनी छाती पर हाथ रखकर देखो कि तुम असली हो कि नकली, तो फिर आपको मालूम पड़ जाएगा कि हम कितने असली हैं और कितने नकली हैं। हम तो चाहेंगे कि आप असलियों में भरती हो जाएँ और नकलीपन को छोड़ दें। नकलीपन को छोड़िए और असली में आ जाइए। बेटे! ज्यादा तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पैंतीस-चालीस मिनट हो गए, मैं अब बात को लगभग समाप्त करती हूँ।

यह मिनी वसंत पर्व किस उद्देश्य से लगाया गया था? इसी उद्देश्य से लगाया गया था कि जो हमारे परिजन हैं, जो छूट गए थे, जो वसंत पर्व पर नहीं आए थे, उनको हमने बुलाया; ताकि पीछे इनको कोई पश्चात्ताप न रह जाए और ये गुरुजी को प्रणाम कर लें, उनके चरणस्पर्श कर लें। फिर मौका जाने मिला या नहीं मिला।

बेटे! हम क्या कह सकते हैं? उन्होंने तो अपने ऊपर बंधन लगा लिया। मिल भी सकते हैं, किसी को बुला भी सकते हैं। ऐसा भी नहीं है, चाहेंगे तो उसको बुला लेंगे, इतना बड़ा काम करना है, तो क्यों नहीं बुला लेंगे? बुला भी सकते हैं और कभी भी न बुलाएँ, किसी को भी न बुलाएँ, तो आप उसमें निराश मत होइए, आप हमसे जुड़े हैं। तो आपके लिए तो वे बातचीत करें, चाहे न करें। हैं तो आपके पिता ही। न मिलेंगे तो न मिलेंगे, मैं तो मिलूँगी आपसे।

नहीं साहब! आप भी कहाँ मिलती हैं? आप भी कहीं नहीं मिलतीं, बैठा लेती हैं आधा घंटा और फिर कहती हैं उठ जा। बेटा! यह तो अब विशेष परिस्थितियों की बात है। बताइए, कमरे में पचहत्तर व्यक्ति आते हैं और पचहत्तर को मैं पूछूँ, तो उसमें दो घंटे लगेंगे कि नहीं लगेंगे और सबको मौका देना है, तो फिर मुझे यहीं बैठे रहना पड़ेगा। आप तो इसमें प्रसन्नता अनुभव कीजिए।

दुनिया के बड़े-से-बड़े व्यक्ति आते हैं, जो पाँच मिनट के लिए तरसते हैं कि हमें पाँच मिनट तो कम-से-कम मिल जाएँ; लेकिन उन्हें पाँच मिनट का भी मौका नहीं लगता है, कम-से-कम आपको बैठाया तो है। आधा घंटा अपने समीप तो बैठाया है, तो यह क्या कम है। हमारे बच्चे आए हैं। बेटे! आपको प्यार का अनुभव तो हुआ, आपको स्नेह का अनुभव तो हुआ और हमारी भावना यही रही कि देखो बच्चे कितनी-कितनी दूर से आए, थोड़ी देर हमने आपको बैठा लिया। आप इसमें संतोष करिए, आपको करना चाहिए ।

बस, यहीं मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ कि आप आगे आइए और आगे की लाइन में खड़े होइए, पीछे की लाइन में नहीं। पीछे की लाइन में आप खड़े रहेंगे, तो आप वहीं-के-वहीं रह जाएँगे। आगे आएँगे, तो आप सैनिक के तरीके से आगे सीना तान करके चलेंगे, जिसकी उम्मीद आपसे गुरुजी ने की है।

हमने उम्मीद की है कि हमारे परिजन और ज्यादा-से-ज्यादा समय निकाल करके समर्पित भाव से समाज की सेवा करेंगे। बेटे! समाजसेवा की बहुत जरूरत है। आपको नहीं मालूम गुरुजी के अंदर कैसी अग्नि जल रही है, उसमें से एक चिनगारी भी आप ले जाएँ, तो आप धन्य हो जाएँगे, बेटे! मैं तो धन्य हो गई। अब मुझे लगता है कि और किसी को तो मालूम नहीं है, पर मैं तो पूर्णरूप से उनमें समा गई हूँ और वे मुझमें समा गए हैं।

मुझे अब कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। सारा-का-सारा बस, मेरे लिए वे ही भगवान हैं और मेरे लिए सब कुछ वे ही हैं। तेल वे हैं, तो बाती मैं हूँ। जलेंगे, तो दोनों मिल करके ही जलेंगे। एक जलेगा? नहीं, एक क्यों जलेगा? साथ-साथ हैं, वे दोनों जलेंगे। यही समर्पण काश बेटे! आप में भी आ जाए, भगवान करे आप में आ ही जाए। यह हमारा आशीर्वाद भी है और वरदान भी है। आप उस आशीर्वाद को, उस अनुदान को, बलिदान को निभा लें, तो बेटे! आप धन्य हो जाएँगे जैसे कि मैं धन्य हो गई हूँ, आप भी धन्य हो जाएँगे।

॥ ॐ शांतिः ॥

एक व्यक्ति अपने जीवन से बड़ा परेशान था। उसे हमेशा यही लगता था कि दुनिया की सारी समस्याएँ उसी के पास हैं। थक-हारकर एक दिन वह एक संत के पास गया और उनके समक्ष अपनी मनोव्यथा रखी। संत ने कहा—"बेटा! तू आज रात मेरे पास ही रुक जा। मेरे पास सौ ऊँट हैं, तू उनकी देख-भाल करना और उनमें से किसी को खड़े मत होने देना। अगले दिन संत उठे तो वह व्यक्ति बोला—"महाराज! मैं तो रात भर ऊँटों को बिठाने में ही परेशान हो गया। एक को बिठाता था तो दूसरा खड़ा हो जाता था। रात भर ऐसे ही चलता रहा।" संत बोले—"बेटा! समस्याएँ भी ऊँटों के समान हैं। किसी भी व्यक्ति की सारी समस्याएँ एक साथ नहीं सुलझतीं। उनके होते-होते जीवन में आनंद लेना सीख, नहीं तो इन ऊँटों को बिठाने की तरह तू जीवन भर परेशान ही रहता रहेगा।"

प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणें

'अंतर्जगत्' जीवन एवं जगत् की उच्चतम कक्षा है। संपूर्णतया यह प्रकाश से प्रकाशित क्षेत्र है। ऐसे में यहाँ प्रकाश बिखेरने व प्रकाश के रंग में रँगने की बात कुछ उलटी-पुलटी और विचित्र-सी है; क्योंकि जहाँ प्रकाश-ही-प्रकाश है, जहाँ सब कुछ प्रकाश से ही विनिर्मित हो, वहाँ भला किस तरह से प्रकाश निखरेगा और बिखरेगा? मानव मन एवं बुद्धि के लिए ये सवाल तब तक सहज हैं, जब तक मानव चेतना अंतर्दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि एवं दिव्यदृष्टि से वंचित है।

हाँ, यह सच है कि समूची ब्रह्मांडीय जीवन-व्यवस्था यहीं से प्रकाश, प्राण व प्रेरणा पाती है। ब्रह्मांडीय संचालन का उच्चतम केंद्र भी यही है। अंतर्जगत् का अर्थ है—त्रिदेवों एवं महर्षियों व ब्रह्मर्षियों का कार्यक्षेत्र। यहीं से प्रकाश का संवाहन-संप्रेषण सूक्ष्मजगत् के भिन्न-भिन्न केंद्रों से धरती पर पहुँचता है। ऐसे में यहीं अंधकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यह सच मान्य होते हुए भी इससे जुड़ा सत्य यह भी है कि यहाँ के व्यवस्था क्रम में बीते दिनों कई व्यतिक्रम आए हैं।

स्वाभाविक है कि ये सभी व्यतिक्रम असुरों ने ही उत्पन्न किए होंगे। बात जब असुरों की कही जाती है, तो इसमें यह सत्य भी निहित होता है कि असुर व्यक्ति नहीं वृत्ति है और यह वृत्ति कहीं भी, किसी में भी उत्पन्न हो सकती है। फिर ये कहीं के भी रहवासी क्यों न हों? स्वार्थ का, अहंता व आसक्ति का जहाँ बोल-बाला हुआ, वहीं पर आसुरी व्यक्तित्व उठ खड़ा होता है। फिर ये दैत्य-दानव हों या देवता, गंधर्व अथवा फिर मनुष्य। इस वृत्ति के कारण ही भगवान विष्णु के पार्षद जय-विजय, महाअसुर रावण-कुंभकर्ण बन गए। कबंध राक्षस का स्वरूप पाने वाला पहले गंधर्व ही तो था। ऐसी न जाने कितनी कथा-गाथाएँ हैं, जो बताती हैं कि असुरता व्यक्तियों में नहीं, वृत्तियों में वास करती है। जहाँ ऐसी आसुरी वृत्तियाँ सघन हो जाती हैं, वहाँ समूचा व्यक्तित्व असुर रूप धारण कर लेता है। केवल

ऐसी न जाने कितनी कथा-गाथाएँ हैं, जो बताती हैं कि असुरता व्यक्तियों में नहीं, वृत्तियों में वास करती है। जहाँ ऐसी आसुरी वृत्तियाँ सघन हो जाती हैं, वहाँ समूचा व्यक्तित्व असुर रूप धारण कर लेता है।

तप करने से कोई ऋषि नहीं हो जाता। रावण और हिरण्यकशिपु ने भी घनघोर तप किया था। ब्रह्मा व शिव से अनेकों वरदान पाए थे, लेकिन इस सारे तप और तप से मिले वरदानों ने उन्हें असुर बनाया। ऋषि बनने के लिए सिद्धि नहीं, शुद्धि चाहिए। यदि किसी ने शुद्धि के बिना ही सिद्धि पा ली, तो वह असुर भी हो सकता है। ये और ऐसे अनेकों असुर केवल धरती के नीचे के लोकों में ही नहीं रहते, ये धरती पर धरती के ऊपर के

लोकों में भी रहते हैं। ऐसे असुरों ने प्रकाश लोक को भी मलिन करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

यह सच है कि अंतर्जगत् महर्षियों, ब्रह्मर्षियों एवं त्रिदेवों का कार्यक्षेत्र है, लेकिन त्रिदेवों से तप-बल से वरदान पाने वाले असुर यदा-कदा यहाँ भी घुस-पैठ करते रहते हैं। अपनी वरदान शक्ति का दुरुपयोग करके इस क्षेत्र से होने वाले प्रकाश संवाहन-संप्रेषण को अवरुद्ध करते हैं, इसे बाधित करते हैं। प्रकृति में उदय होने वाला सतयुगी सूर्योदय इस अवरोध, प्रतिरोध एवं बाधा-व्यतिक्रम को समाप्त करेगा और कुछ ऐसा करेगा, जिससे कि प्रकाश धरती पर आसानी से पहुँच सके। फिर से यहाँ के मुरझाए जीवन में नवप्राण, नवीन चेतना जगा सके। अभी असुर अपने विविध घात-प्रतिघात से ऐसा नहीं होने दे रहे।

बात अंतर्जगत् की चली है, तो इसे थोड़ा अधिक विस्तार से समझ लेते हैं। हमारे जीवन में यह उपलब्धि असाधारण साधना से ही संभव है। दोनों भौंहों के मध्य त्रिकुटी-क्षेत्र से आगे बढ़ने पर आज्ञा क्षेत्र, इससे और आगे सीधी रेखा में, माथे पर जहाँ बाल शुरू होते हैं, वहाँ ब्रह्मरंध्र है। यह वही स्थान है, जहाँ पर महिलाएँ अपने माथे पर सिंदूर लगाती हैं। योग-साधना में इसे दशम द्वार कहा गया है। यही जीवन-चेतना की उच्चतम कक्षा में पहुँचने का प्रवेश द्वार है।

इससे आगे बढ़ने पर सहस्रार व चक्रिणी का क्षेत्र है। भौंहों के बीच त्रिकुटी-क्षेत्र से सीधी रेखा में आगे बढ़ते जाएँ, तो इस प्रकाश-पथ के इन सभी केंद्रों में जाना संभव होता है। सीधी रेखा में त्रिकुटी से चक्रिणी तक के प्रकाश पथ में ज्ञान व मोक्ष सभी हैं, परंतु सामान्य जनों में ही नहीं, पहुँचे हुए साधकों में भी कहीं-न-कहीं यह मार्ग अवरुद्ध ही मिलता है। यदि किसी सुयोग-संयोगवश यह मार्ग खुल भी गया, तो असुरमाया-देवमाया असंख्य विघ्न उत्पन्न कर देती है। इससे बच जाने पर ईश्वरीय माया, महामाया अनेक तरह की कठिन परीक्षाएँ सामने रखती हैं।

इन्हीं परीक्षाओं के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने गरुड़-काकभुशुंडि संवाद में ज्ञान-दीपक प्रकरण में इसका उल्लेख किया है, उन्होंने लिखा है—

छोरत ग्रंथि जानि खगराया।
बिघ्न अनेक करइ तब माया॥
रिद्धि-सिद्धि प्रेरइ बहु भाई।
बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा।
अंचल बात बुझावहिं दीपा॥

—रा०च०मा०, उ०कां०—117घ/6-8

केवल तप करने से कोई ऋषि नहीं हो जाता। रावण और हिरण्यकशिपु ने भी घनघोर तप किया था। ब्रह्मा व शिव से अनेकों वरदान पाए थे, लेकिन इस सारे तप और तप से मिले वरदानों ने उन्हें असुर बनाया। ऋषि बनने के लिए सिद्धि नहीं, शुद्धि चाहिए। यदि किसी ने शुद्धि के बिना ही सिद्धि पा ली, तो वह असुर भी हो सकता है।

काकभुशुंडि जी कहते हैं—"हे गरुड़ जी! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है। हे भाई! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जाती हैं और आँचल की वायु से उस ज्ञान-दीपक को बुझा देती हैं।"

ऐसा है यह माया का अँधेरा, जिससे ऋषि की राह पर चलने वाला भी असुर होने की राह पर चल पड़ता है। जो इससे छूट पाया, वह ब्रह्मर्षि पद पाता है और परमात्मा का सहयोगी बनकर ब्रह्मांडीय जीवन-व्यवस्था में जीवन व जगत् के संचालन में अपना योग देता है।

यहाँ रहने वाले ब्रह्मर्षिगण यही कर रहे हैं। जो भटक गए, वे असुर बनकर इनके कार्यों में विघ्न-बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। ये प्रकाश-क्षेत्र में रहकर भी अँधियारे में भटक रहे हैं। यह माया का अंधकार है। प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणें जब अंतर्जगत् को अपने रंग में रँगेंगी, तब इनकी भटकन दूर होगी। इन्हें भी सुपथ मिलेगा।

यहाँ रहने वाले ब्रह्मर्षिगण अनेकों तरह के शोध-अनुसंधान करते हैं। नवीन जीवनसूत्रों की खोज करते हैं। यही अंतर्जगत् का अंतर्विज्ञान है। उनका यह शोध अहोरात्रचक्र, ऋतुचक्र, वर्षचक्र, सौरचक्र, चंद्रचक्र आदि को व्यवस्थित करने के लिए होता है। ऋग्वेद व यजुर्वेद में इसका वर्णन है। ऋषियों ने इसे प्राकृतिक यज्ञ कहा है। इसमें उन्होंने बताया है—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसंतो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥

—*ऋग्वेद 10.90.6*

इसमें वसंत ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद ऋतु हव्य। वसंत के बाद ग्रीष्म, ग्रीष्म के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद एवं शरद के बाद वसंत। इस प्रकार वर्षचक्र पूरा होता है।

ब्रह्मर्षिगणों के अनुसार—**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥** —*यजुर्वेद 23.62* यह यज्ञ सृष्टिचक्र का केंद्र है, लेकिन उनके अनुसार यज्ञाग्नि प्रदीप्त करने का अर्थ है—आत्मज्योति को प्रदीप्त करना। इस आत्मज्योति के उद्बुद्ध होने से जीवन की सम्यक शुद्धि होती है। ब्रह्मर्षियों के अनुसार-यज्ञ के दो कार्य हैं—(1) स्वाहा और 'इदं न मम' की भावना जाग्रत करना। स्वाहा का अर्थ है, स्व—स्वार्थ बुद्धि को, आ—पूर्णतया, हा—छोड़ना अर्थात स्वार्थ भावना का पूर्णतया परित्याग। यही भाव 'इदं न मम' का भी है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। फलाकांक्षा का संपूर्ण त्याग ही उनके यज्ञ का मर्म है। (2) आत्मसमर्पण—परमात्मा में स्वयं को समर्पित करना। ऐसा करने से जीवात्मा को कर्मबंधन नहीं बाँध पाता।

अंतर्जगत् के ब्रह्मर्षि अपने अंतर्विज्ञान के अनेकों तरह के शोध-अनुसंधान से ब्रह्मांडीय जीवन-व्यवस्था में अपने योगदान का प्रयास करते हैं, परंतु माया के अँधियारे में भटक रहे असुरों के उपद्रव अभी इसमें बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। अंतर्जगत् में फैलने वाला सत्य, सत्त्व व सत् का प्रकाश अवश्य इन भटकों को दिशा दिखाएगा।

इनमें से जो ऐसा नहीं करेंगे, वे स्वयं ही उसी तरह से समाप्त होंगे, जैसे कि पतंगे—अग्नि की लौ और लपटों में समाप्त हो जाते हैं। तब फिर अंतर्जगत् का प्रकाश सूक्ष्मजगत् के केंद्रों के अवरोधों को दूर करेगा। इनके दूर होने पर सूक्ष्मजगत् की अव्यवस्थित व्यवस्था फिर से व्यवस्थित हो पाएगी। ❑

इतिहास भी इस तथ्य का साक्षी है जब-जब भी बिगड़ा बेकाबू हुआ है, उसे नियंत्रित करने हेतु महाकालरूपी महावतों की मार ही सफल हो पाई है। प्रकारांतर से इसे भगवान की अवतार की संज्ञा भी दी जा सकती है। अदृश्य युग-प्रवाह का विनिर्मित होना ही प्रज्ञावतरण है। समझ जब काम नहीं करती, तब अदृश्य जगत् से, परोक्ष के व्यवस्था उपक्रम से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस धरित्री को महाविनाश के गर्त में जाने नहीं देगा। नियंता ने सदैव संतुलन स्थापित करने हेतु दौड़ लगाने का अपना वचन निभाया है।

समाज के नवनिर्माण की वैचारिक पृष्ठभूमि

जब भी समाज-निर्माण की बात उठती है, तो इसकी प्राथमिक इकाई इनसान से विचार करना अभीष्ट रहता है; क्योंकि व्यक्तियों से मिलकर ही समाज बनता है। जो प्रवृत्तियाँ व संस्कार व्यक्ति-परिवार को जकड़े रहते हैं, वे ही प्रकारांतर में समाज के अभ्युदय में बाधक एवं सहायक सिद्ध होते हैं। समाज का विकास क्रम बताता है कि मनुष्य आदिम युग से चलकर आधुनिक युग तक प्रगति करते-करते अपनी मूल प्रवृत्तियों को छोड़ता व मानवोचित संस्कारों को ग्रहण करता चला आया है।

हालाँकि परिवार व वंशानुक्रम का अपना प्रभाव रहता है। वातावरण के प्रभाव में व्यक्तित्व को बनते-बिगड़ते देखा जाता है, फिर भी इन्हें पत्थर की लकीर नहीं कहा जा सकता। हेय परिस्थितियों में जन्मे-पले लोगों में से असंख्य ऐसे हुए हैं, जिन्होंने संचित कुसंस्कारों की केंचुली को साहसपूर्वक उतार फेंका और दिशा बदलकर उस ओर चल पड़े, जिस ओर उस समुदाय का कोई कदाचित् ही चला हो।

रैदास, कबीर, दादू, नानक आदि संतों, बुद्ध, महावीर, समर्थ रामदास, अरविंद आदि महामानवों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिनकी सहायता का श्रेय उनकी प्रारंभिक परिस्थितियों को मिल सके। कुछ तो ढलती आयु में बदले और इस जन्म के अभ्यस्त कुसंस्कारों को तिनके की तरह तोड़ने में समर्थ हुए। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, चंडअशोक, अजामिल, बिल्वमंगल आदि की लंबी शृंखला ऐसे अप्रत्याशित परिवर्तन की संभावना सिद्ध करने के लिए साक्षी रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

यह सब इसलिए कहा जा रहा है कि जीवन दर्शन में उत्कृष्टता का समावेश करने, दृष्टिकोण में आदर्शवादी मान्यताओं को स्थान दिलाने की अनिवार्यता-महत्ता को समाज को दिशा दिलाने वाले मनीषी भली-प्रकार समझ लें।

यह एक शाश्वत एवं सामयिक आवश्यकता है, जिसे इन दिनों हर कीमत पर पूर्ण किया जाना है, अन्यथा लोक-प्रवाह जिस दिशा में बह रहा है, उसे देखते हुए स्वार्थपरता और आक्रामकता की बढ़ती हुई प्रवृत्तियाँ सारे वातावरण को विषाक्त किए बिना न रहेंगी।

यह विषाक्तता अंततः अराजकता की गृहयुद्ध जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगी। फलस्वरूप सामूहिक आत्महत्या जैसे महाविनाश के दृश्य उत्पन्न होंगे। आवश्यक नहीं कि इसके लिए परमाणु बम ही बरसें।

आपा-धापी की विकृति ने एकदूसरे को चीर खाने के लिए उत्साहित किया है। ऐसे में विजयी-पराजित, दोनों ही अपना अस्तित्व गँवा बैठते हैं। इस तथ्य की साक्षी में प्राणिजगत् के अनेकों उद्धत समुदायों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जो कभी बहुत समर्थ रहे हैं, किंतु अब उनका कोई अता-पता शेष नहीं।

मनुष्य भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। वह शालीनता और उदार सहकारिता की नीति अपनाकर आगे बढ़ा है। इसके विपरीत भावना-

क्षेत्र में दुष्ट-दुर्बुद्धि का समावेश कितनी समस्याएँ और विभीषिकाएँ उत्पन्न करता है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हम अपने चारों ओर पग-पग पर उपस्थित देख सकते हैं।

निस्संदेह रूप में शालीनता ही एकमात्र वह आधार है, जिसे अपनाकर मनुष्य सुखी, संतुष्ट रह सकता है और प्रगति-पथ पर अनवरत क्रम से समूचे समुदाय के साथ आगे बढ़ सकता है। उसकी जितनी उपेक्षा होगी, दुष्परिणामों की उतनी ही वृद्धि होगी।

आज के लाभ भर की बात समझने वाले जीवधारी भी स्तर की दृष्टि से उपहासास्पद बने हुए हैं। मनुष्य भी यदि दूरदर्शिता, विवेकशीलता, न्यायनिष्ठा, सहकारिता, संयमशीलता जैसी गरिमामयी सत्प्रवृत्तियों का अवलंबन त्यागता है तो प्रस्तुत संपदा एवं चतुरता भी उसे दुर्गति से बचा नहीं सकेगी। बढ़े हुए साधन उसे अधिक तेजी से महाविनाश के गर्त में गिराने की भूमिका प्रस्तुत करेंगे।

सामयिक एवं भावी विपत्ति से बचने का, शांति एवं प्रगति का उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक ही मार्ग है कि लोकचिंतन एवं लोक-व्यवहार में सदाशयता का उच्चस्तरीय समावेश हो। समाज में ऐसी परंपराएँ चलें, जिसमें एकदूसरे के प्रति स्नेह-सम्मान का प्रतिपादन हो और जिनमें संयमशीलता सच्चरित्रता के उदार सहयोग में एकदूसरे से आगे बढ़ने की स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता दिखाई पड़े।

इन दिनों इसकी आवश्यकता समझी तो जा रही है, किंतु उसके लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं, वे सर्वथा उथले, अधूरे, कागजी एवं सतही हैं। प्रवचन, लेखन से आदर्शों की महत्ता बताने के प्रयत्न होते रहते हैं, मानो किसी को इससे पूर्व उन बातों की जानकारी ही न रही हो। सच तो यह है कि जिन्हें उपदेश दिए जाते हैं, वे सभी उसी की तरह शिक्षाएँ अपने से छोटों को दिया करते हैं। फिर एकदूसरे के साथ इस प्रकार के खिलवाड़ जैसे विनोद कौतुक की विडंबना रचने से अधिक कुछ हस्तगत होने वाला नहीं।

लोकचेतना में अवांछनीयता का असाधारण समावेश प्रचलन द्वारा उसका समर्थन, पोषण ऐसा संकट है, जिससे उबरने के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन करने होंगे। राजक्रांति कुशल योद्धाओं की रणनीति द्वारा सफल हो सकती है।

अर्थक्रांति के लिए यदि उत्पादन-उपभोग के दोनों पक्ष उस क्षेत्र के मूर्द्धन्य लोग सँभाल सकें, तो उतने भर से संपन्नता न सही, निर्वाह की सुविधा तो सुनिश्चित हो सकती है। जापान की अर्थनीति और प्रगति इसका उदाहरण है। आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन के लिए तमाम तरह की क्रांतियाँ होती रही हैं, पर उस सामाजिक क्रांति के लिए असाधारण व्यूह रचना करने एवं साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ेगी, जिसमें नैतिक और बौद्धिक क्रांति के उत्कृष्टतावादी तत्त्वों का समुचित समावेश हो।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक प्रगति की बात सोचते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि राष्ट्र या समाज का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह व्यक्तियों के समुच्चय से मिलकर बनता है। वस्तुतः इनकी प्रगति की, समृद्धि की, प्रखरता, समर्थता की बात सोचना हो तो उस क्षेत्र में निवास करने वालों के व्यक्तित्व का स्तर समझना होगा और उस क्षेत्र की विकृतियों को निरस्त एवं सत्प्रवृत्तियों को प्रखर कराने की योजना बनानी होगी। इससे कम में बात बनती भी नहीं।

साधनों से सुविधा बढ़ती है यह ठीक है, लेकिन यदि व्यक्तित्व में निकृष्टता घुसी रहे तो

बढ़ी हुई संपदा का दुरुपयोग होगा और फलस्वरूप उतनी विपत्तियाँ बढ़नी निश्चित हैं, जितनी कि अभावग्रस्त स्थिति में सहन न करनी पड़तीं।

उलझी अंटी का छोर तलाश करते-करते बात वहाँ आकर रुकती है, जहाँ व्यक्तित्व स्तर का केंद्र बिंदु है। मनुष्य की सामर्थ्य असीम है, पर उसे सत्प्रयोजनों में लगाने का अवसर भी तो मिले।

यह कार्य कौन करे? निश्चित रूप से यह सामर्थ्य उत्कृष्टतावादी दर्शन में ही है। दर्शन से तात्पर्य उस आस्था से है, जो अंतराल की गहन परतों का स्पर्श करती है। कानूनी नियम और बौद्धिक प्रशिक्षण तो इस दिशा में बहुत थोड़ी सहायता कर पाते हैं।

सच तो यह है कि अंतराल की आस्थाओं के निर्देशन, विचारणा और क्रिया-प्रक्रिया का बलात् अनुकरण करना होता है। कानून और धर्मोपदेश दोनों ही उस स्थिति में अपंग बने रहते हैं। आस्था का केंद्र ही व्यक्ति का ध्रुव नाभिक है। उस क्षेत्र को स्पर्श किए बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्टतावादी नहीं बनाया जा सकता। संक्षेप में दर्शन की इस सामर्थ्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया जा सकता है और उसे व्यक्तित्व एवं समाज का भाग्य-विधाता कहा जा सकता है। ❑

एक मजदूर अपनी आर्थिक स्थिति से दुःखी होकर महात्मा जी के पास आशीर्वाद लेने पहुँचा। महात्मा जी ने उस पर दया करते हुए उसे अपना गधा दे दिया। मजदूर गधा पाकर बड़ा खुश हुआ कि अब उसे ईंट, गारा उठाने में बड़ा सहयोग हो जाएगा। उसकी सवारी भी वह कर सकेगा।

ऐसा सोचते हुए वह जा रहा था कि गधा जमीन पर गिरा और मर गया। दुःखी मजदूर ने उसको वहीं गड्ढा खोदकर दफनाया और फिर रोने लगा।

उसे कब्र के पास रोते देख राह गुजरते एक राहगीर ने सोचा कि जरूर यहाँ कोई दिव्य आत्मा चल बसी है और उसने कब्र पर सिर झुकाकर कुछ पैसे चढ़ा दिए। मजदूर कुछ बोलता, इससे पहले वहाँ पैसा चढ़ाने वालों की भीड़ लग गई और लोगों का ताँता लगना शुरू हो गया।

घबराए मजदूर ने जाकर सारी बात महात्मा जी को बताई तो वे बोले—"कोई बात नहीं बेटा! मैंने सहृदयतापूर्वक तेरी सहायता की थी और भगवान को शायद यही मार्ग तेरी सहायता के लिए मंजूर था। वह गधा जो मदद तेरी जीते जी न कर सका, वह मरकर कर गया। इन पैसों का इस्तेमाल कर कुछ अच्छा कार्य करना। याद रखना कि यह दुनिया ऐसे ही अंधविश्वासों को पालकर बैठी हुई है। इसलिए अपने अच्छे कर्मों पर भरोसा रखना, मुफ्त के चमत्कारों में नहीं।"

समर्पण पर्व आया है

शक्ति सविता से आई है, समर्पण पर्व आया है।
वसंती पुष्प मुस्काए, चतुर्दिक हर्ष छाया है॥

समर्पण की बजे सरगम, गीत खुशियों के गाएँगे,
नहीं भूलेंगे पथ अपना, कदम मिलकर बढ़ाएँगे,
जन्मदिन पर हिमालय से, नया संदेश आया है।
वसंती पुष्प मुस्काए, चतुर्दिक हर्ष छाया है॥

सघन साधना का फल, सुनिश्चिय मिलने वाला है,
प्रखर प्रज्ञा जगी युग की, अँधेरा जाने वाला है,
पूज्य गुरुवर के साहित्य ने, असर अपना दिखाया है।
वसंती पुष्प मुस्काए, चतुर्दिक हर्ष छाया है॥

मनीषा जग रही जग की, सृजन का भाव जागा है,
तरुणाई आगे आई है, सोया देवत्व जागा है,
नवयुग शीघ्र आएगा, मनुज ने मन बनाया है।
वसंती पुष्प मुस्काए, चतुर्दिक हर्ष छाया है॥

शताब्दी तीनों तरह की, हम सभी मिलकर मनाएँगे,
उदय देवत्व का करके, धरा पर स्वर्ग लाएँगे,
सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा को, मन मंदिर बिठाया है।
वसंती पुष्प मुस्काए, चतुर्दिक हर्ष छाया है॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

अयोध्या में रामलला प्राणप्रतिष्ठा समारोह के पावन उपलक्ष पर युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में
विशाल शोभायात्रा का आयोजन

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-03-2024
Regd. N0. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP- 08/2024-2026

अयोध्या में रामलला प्राणप्रतिष्ठा समारोह के पावन उपलक्ष पर
युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में अखंड रामायण पारायण एवं दीप महायज्ञ का भव्य आयोजन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org